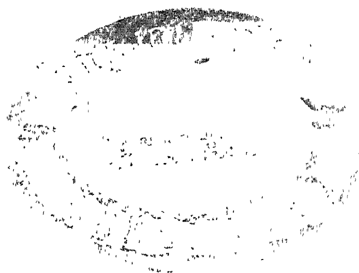
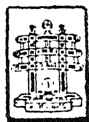
प्रतिनिधि संकलन
कविता
मराठी

सन् १९४० से १९६४ तककी आधुनिक मराठी कविताके अठारह प्रतिनिधि कवियोंकी चुनी हुई कविताओंका संकलन

*

रूपान्तर एवं संकलनकर्त्ता
दिनकर सोनवलकर





भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला : ८

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक –२२४

सम्पादक एवं नियामक :

लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 224

PRATINIDHI SAMKALAN
KAVITA : MARATHI

(Representative Modern Marathi Poems)

Translated & Compiled
by
DINKAR SONVALKAR

Bharatiya Jnanpith Publication

First Edition 1965

Price Rs. 4.00

प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
६ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९६५
मूल्य ४.००

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी–५

मराठी नयी कविताके प्रवर्तक
स्वर्गीय बा० सी० मर्ढेकर
को

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला



भारतीय-ज्ञानपीठके समस्त प्रकाशनोंसे और संस्थाकी गतिविधिसे जो पाठक परिचित हैं वे जानते हैं कि ज्ञानपीठने हिन्दी-प्रकाशनके क्षेत्रमें एक व्यापक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणको निष्ठापूर्वक अपनाया है।

पालीमें 'जातकट्ठकथा', तमिलमें 'थिरुकुरल', हिन्दीमें 'वैदिक साहित्य' और नागरी लिपिमें उर्दूके समूचे संकलनीय काव्य-साहित्यको प्रस्तुत करनेके मूलमें देशकी सांस्कृतिक उपलब्धिको समग्र और अखण्ड रूपसे जानने-माननेकी दृष्टि है।

अब लोकोदय ग्रन्थमालाके अन्तर्गत, 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' की योजना इस दिशामें ज्ञानपीठका अगला पग है। इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत ज्ञानपीठकी योजना है कि भारतीय भाषाओंमें लिखनेवाले सभी प्रमुख साहित्यकारोंकी रचनाओंके अलग-अलग ऐसे संकलन प्रकाशित किये जायें जिनमें स्वयं लेखकोंके द्वारा चुनी हुई उनकी विविध शैली-शिल्पों-में लिखी सर्जनात्मक साहित्यकी प्रतिनिधि रचनाएँ हिन्दी अनुवादके रूपमें संग्रहीत हों। प्रसन्नताकी बात है कि इस योजनाके लिए भारतके सभी मूर्धन्य साहित्यकारोंका सहयोग ज्ञानपीठको प्राप्त हुआ है।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के माध्यमसे देशके साहित्यकार स्वयं तो एक मंचपर आयेंगे ही, पाठकोंको विशेष लाभ यह होगा कि सभी ख्यातिप्राप्त लेखकोंकी बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभासे परिचित होंगे, और कुछ अनुमान लगा पायेंगे कि हमारे देशमें समसामयिक साहित्यका

स्वर क्या है, स्तर क्या है, उपलब्धि क्या है, और यह कि देशके साहित्य-समीक्षक इस प्रकारकी रचनाओंको विश्व-साहित्यकी समान शैली-शिल्प-वाली रचनाओंकी तुलनामें क्या स्थान देते हैं, या कम-से-कम यह कि भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारके साहित्यका तुलनात्मक मूल्यांकन क्या जानकारी प्रस्तुत करता है। किन्तु किसी निष्कर्षपर पहुँचनेसे पहले पाठकों और समीक्षकोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि इस प्रकारके स्फुट संकलनोंके आधारपर तुलनात्मक मूल्यांकनकी अपनी सीमाएँ हैं।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' का एक पक्ष यह भी है कि जो हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और अन्ततोगत्वा जिसे इस रूपमें देशमें सभी प्रकारसे समादृत होना है, उसका साहित्य-कोष इस प्रयत्न-द्वारा समृद्ध हो। हमारी भावना है कि इसे हिन्दीकी ओरसे अन्य सहोदरी भारतीय भाषाओंका अभिनन्दन-आयोजन भी माना जाये।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के माध्यमसे अनुवादके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षोंपर विचार करनेका अवसर भी पाठकों और समीक्षकोंको मिलेगा। यह स्वयं एक राष्ट्रीय उपलब्धि होगी। इसका अर्थ यह कि अनुवादके रूप और प्रकृतिके सम्बन्धमें हम कोई विशेष आग्रह लेकर नहीं चलते—केवल इतना ही कि मूलका भाव सुरक्षित रहे और अनुवाद सुबोध हो। मुहावरों, शब्द-बन्धों और भाषा-प्रयोगोंके क्षेत्रमें हिन्दीको अन्य भारतीय भाषाओंसे कुछ लेना है, लेना चाहिए, इस दृष्टिकोणको सामने रखनेके परिणामस्वरूप अनुवादमें यदि कहीं कुछ अप्रचलित या अटपटा-सा लगे तो वह इस दृष्टिसे विचारणीय है कि इसमें क्या ग्राह्य है क्या अग्राह्य। निर्णय भाषाविद् दें—विशेषकर वे जिनकी मातृभाषा वही है जो मूल लेखककी और साथ ही जो हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें समृद्ध करनेकी क्षमता रखते हैं।

विशिष्ट लेखकों-द्वारा अपने सारे सर्जनात्मक लेखनमें-से स्वयं चुन-कर दी हुई रचनाओंके छह संकलन अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। इस

प्रकारके संकलनोंके अतिरिक्त 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' में ऐसे संकलन भी आयोजित हैं जो समग्र भारतीय साहित्यमें अथवा किसी एक भारतीय साहित्यमें कहानी, कविता, एकांकी आदि प्रत्येक विधाकी साहित्यिक उपलब्धिको दरशा सकें और, इस दृष्टिसे, जिनमें विभिन्न लेखकोंकी श्रेष्ठ कृतियाँ सम्मिलित होंगी। एक संकलन इस वर्गके अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा चुका है : प्रतिनिधि संकलन एकांकी। इसमें नौ भाषाओंका एक-एक प्रतिनिधि एकांकी सम्मिलित किया गया है। एक और इसी कोटिका यह प्रस्तुत है : 'प्रतिनिधि संकलन : कविता—मराठी'। इसमें सन् १९४० से १९६४ तककी आधुनिक मराठी कविताके अठारह प्रतिनिधि कवियोंकी चुनी हुई कविताएँ सम्मिलित हुई हैं।

भारतीय भाषाओंमें साहित्यिक कृतित्वकी श्रेष्ठताका प्रश्न भारतीय साहित्यके मानदण्डका प्रश्न है। उसके लिए भारतीय ज्ञानपीठकी एक अलग योजना है जिसके अनुसार प्रतिवर्ष भारतीय साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ कृतिको एक लाख रुपयेके पुरस्कार-द्वारा सम्मानित किया जायेगा : कृति-कारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ।

— लक्ष्मीचन्द्र जैन

भूमिका

१९४९ में नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थमें 'आधुनिक मराठी साहित्यकी प्रवृत्तियाँ' लेखमें पृष्ठ ५५९ पर मैंने लिखा था :

"क्योंकि सौन्दर्यको भी जीवनके परिपार्श्वमें देखना होगा और तब कविकी भावुकताकी सरिता केवल मिलन-विरहके पुलिनोंसे न टकराकर वास्तवमें पत्थरों, उपयोगितावादी सिकता और इतिहासकी गतिसे भी प्रेरित होगी। केशवसुत (कृष्णाजी केशव दामले) ही इस राष्ट्रीय नवचेतनाके प्रथम अग्रदूत थे। हिन्दीके भारतेन्दुकी भाँति उन्होंने अपनी तुतारी (तुरही) फूँकी। उन्होंने मराठीमें राष्ट्रीय स्वातन्त्र्योन्मुखी कविताका शंखनाद किया। उसी राष्ट्रीय चेतना-युक्त परम्परामें शाहीर गोविन्द, विनायक, माधव, सावरकर, यशवन्त आदि आते हैं। इनकी प्रेरणाका स्रोत मुख्यत: महाराष्ट्रका अतीत था। और मातृभूमिके प्रति बलिदानकी भावनासे इनकी रसवन्ती ओतप्रोत थी। इस परम्पराने नये युगमें नया रूप ले लिया और 'मानवता' और 'बण्ड' लिखनेवाले 'अनिल' (आत्माराम रावजी देशपाण्डे) को अपनी रचनाओंमें एक भिन्न प्रकारके परिपार्श्वपर उसी प्रक्षोभ रसको व्यक्त करना पड़ा। पहले जो कवि विधवाके दुःखसे तिलमिलाता था, अब वह सामाजिक विषमता देखकर क्रुद्ध हो उठता है। यों अब वह सहानुभूतिके साहित्यकी अपेक्षा त्वेष और आवेशका साहित्य रचता है। कुसुमाग्रज अपनी प्रेयसीसे कहते हैं, 'सखि, तुमने जो चाँदनीके हाथ मेरे गलेमें डाले हैं उन्हें हटा लो। क्षितिजके उस पार दिनके दूत आकर खड़े हैं।' ये दिनके दूत कवियोंको नया जीवन-

संगीत सिखा रहे हैं, जिसमें दासताकी शृंखलाओंको तोड़नेकी व्याकुलता है। अनिलने अपनी 'मानवता' कवितामें लिखा है 'कहीं भी अन्याय हो, हम चिढ़ उठेंगे, कहीं भी चोट पड़े, हम तिलमिला उठेंगे।' मानवतावादी कविताकी परम्परा तुकारामके जो पीड़ित हैं, यातनाके शिकार हैं, उन्हें जो अपनाता है वही साधु है, एकनाथके भूतदयावादमें केशवसुतके 'न मैं ब्राह्मण हूँ, न मैं हिन्दू हूँ, न किसी एक पन्थका हूँ' आदिमें मिलती हैं। समता और स्वतन्त्रताका यह स्वर अनिलके 'सुप्त ज्वालामुखी' में, कुसुमाग्रजकी 'जा जरा पूर्वेकडे' में, श्रीकृष्ण पोवलेके 'पाथरवट' में ना० ग० जोशीके 'विश्वमानव' में और अन्य कई कवियोंमें मिल जायेगा।

परन्तु कवियोंका एक तीसरा दल भी है जिसने इस समाज क्रान्तिमें-से गुज़रनेवाले समाजकी खण्डित मान्यताओंको अनुभव करना शुरू कर दिया है। चाहे इस दलके प्रेरणा-गुरु रामदास हों या 'जीवन एक निरन्तर नृत्य है, जन्म, मैथुन, मृत्यु, इत्यलम्, इत्यलम्' कहनेवाला टी० एस० इलियट, चाहे 'जिमि दशनन मँह जीभ बिचारी' वैसे ही 'हथौड़ोंके बीच हमारा हृदय जी रहा है' कहनेवाले रिल्के हों, चाहे 'बची रहती है हड्डी-सी सूखी आत्माकी निशा' कहनेवाले ऑडेन, मर्ढेकर, य० द० भावे, मनमोहन आदिकी इस नयी परम्पराको अतिवास्तववादी कह सकते हैं। आजके यन्त्र-पीड़ित युगमें पिसे हुए मानवका बीभत्स, गहन निराशापूर्ण चित्रण इन कवियोंने किया है। परिस्थितिका तेज़ाब पीकर इन नये कवियोंके मानवकी ठठरी खोखली हो गयी है, उसकी हड्डियाँ उसके जीवन-मृत मनकी टिकटी हैं, समुद्र उनके लिए उस भंगीके समान है जो अपनी सारी गन्दगी किनारेपर लाकर जमा करता है। जीनेकी भी सख्ती है, मरनेकी भी सख्ती (विवशता) है। 'सर्वे जन्तु रूटिनः सर्वे जन्तु निराशयः' (मर्ढेकर) इस नयी कविताने मानवताके मधुर आशा-स्वप्नको धक्का दिया है, उसने काव्यमें आज तक कभी व्यवहृत न हुए ऐसे शब्दों और मुहावरोंको ला पटका है। अभी यह संज्ञाहीन मानवका भयानक

चित्र देनेवाली कविता प्रयोगावस्थामें है। इसके बारेमें कोई निर्णय जल्दीमें नहीं दिया जा सकता। मनोविकृति और अगतिकता कविताका विषय नहीं हो सकती। यह कहना ग़लत होगा, परन्तु क्या कविता इसी व्यंग्यचित्रात्मक – आघात तन्त्रमें बँधी रह सकेगी? जीवन यदि निरा संगीत, सुमन, सुरा और सपना नहीं है, तो वह निरा कोलाहलमय रास्तेमें होनेवाला सिर दर्द भी तो नहीं है, जो प्रत्येक पंक्तिमें आत्माका कलुष ही दे। नयी मराठी कवितामें अभी नये-नये उन्मेष और समन्वयकी सम्भावनाएँ गर्भित हैं यही इन सब आन्दोलनोंसे कहा जा सकता है।"

अपने ही इस लम्बे उद्धरणसे आरम्भ करनेके लिए माफ़ी चाहता हूँ। आज उस बातको लिखे १६ वर्ष बीत गये। दिल्लीमें बाढ़के पानीमें जल-मल मिश्रणसे फैले पीलियामें मर्ढेकर-जैसी युग-प्रवर्तक प्रतिभा ४६ वर्षकी आयुमें ही सन् १९५६ में हमसे छीन ली गयी। मैं तब निगमबोध घाट-पर उदास सन्ध्या देख रहा था। (सन् १९६४ में उसी निगमबोध घाटपर गजानन मुक्तिबोध भी ४६ वर्षकी उम्रमें फिर हमसे छीन लिये गये।) इस संग्रहमें जो कवि अनुवादित हैं उनमें अकेले मर्ढेकर स्व० कवि हैं; उनके समकालीनोंमें अनिल सबसे ज्येष्ठ कवि। अन्य कवि उम्रसे और काव्य-जगत्में कार्यक्षेत्रकी दृष्टिसे बादमें आते हैं। आधुनिकतावादीमें एक विशिष्ट शैली-प्रवर्तकके नाते मर्ढेकरके बाद पु० शि० रेगे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कुसुमाग्रज और बोरकरका दिनकर-बच्चनकी तरह अपना अलग रंग है। बादमें बसन्त बापट, मंगेश पाडगाँवकर, विन्दा करन्दीकर, शरच्चन्द्र मुक्तिबोधकी ख्याति अधिक हुई। अन्य कवि काफ़ी नये हैं। सर्वाधुनिक दिलीप चित्रे और सदानन्द रेगे हैं। अधिकतर कवि मेरे परिचित हैं।

नये कवियोंमें-से कौन-से कवि दिनकर सोनवलकरने चुने और क्यों चुने, और दूसरे क्यों नहीं चुने, यह संकलनकर्ताकी अपनी रुचिका प्रश्न है। पर मैं समझता हूँ, यह संग्रह काफ़ी प्रातिनिधिक है – सन् १९४०

के बाद आज तककी अर्थात् गये २५ वर्षकी मराठी कविताका, उसकी विविध प्रवृत्तियोंका।

भूमिकामें पहले कुछ कवियोंके बारेमें मैं अपनी बात कहना चाहता हूँ जो उनके रसग्रहणमें अधिक सहायक होगा। साथ ही मराठी कविताकी प्रवृत्तियोंके बारेमें, और अन्तमें कुछ शब्द अनुवादके बारेमें।

यद्यपि इस संग्रहमें अनेक कवि संग्रहीत हैं, मैं केवल॰ उनके बारेमें कहना चाहता हूँ जिन्हें मैं व्यक्तिगत रूपसे विशेष जानता रहा, जिनकी सब प्रकाशित रचनाएँ मैंने पढ़ी हैं, और जिनके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि अभी इनमें विकास होना बाक़ी है। और अभी निर्णयात्मक रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

इन कवियोंको मैं तीन स्तबकोंमें बाँटना चाहता हूँ—एक है नवकाव्य-वाले आधुनिकतावादियोंका जिनमें मर्ढेकर, रेगे, विन्दा करन्दोकर और मंगेश पाडगाँवकर आते हैं और जिनकी सचेतन आधुनिकतावादिताको ही बादमें दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे, सदानन्द रेगे, आरती प्रभु आदि चला रहे हैं या आगे बढ़ा रहे हैं।

दूसरा दल है कविताके सामाजिक आशय और उत्तरदायित्वको महत्त्व देनेवालोंका। इसमें आ० र० देशपाण्डे 'अनिल', कुसुमाग्रज, कान्त, बसन्त बापट, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध आदि आते हैं। इसी दलमें मनमोहन और अमरशेख़ और कई 'लोक शाहीर' आते हैं। यह नहीं कि पहले प्रयोगवादी दलकी छाप दूसरेपर न पड़ी हो या प्रयोगवादियोंने इन सामाजिक आशय-प्रधान प्रगतिवादियोंसे कुछ ग्रहण न किया हो। बल्कि कुछ समय तक दोनों एक-दूसरेसे परस्पर अतिव्याप्त (ओवर-लैपिंग) जान पड़ते हैं।

तीसरा एकान्तिक दल गीतकार कवियोंका है जिसे 'ताम्बे स्कूल' भी कहा जाता रहा है। ब० भ० बोरकर, ग० दि० माडगूलकर ('गीत रामा-

यण' के लेखक जिसे सुनकर विनोबा भावे भी अश्रुसिक्त हो गये थे और चीनी आक्रमणके बाद 'जिकूं अथवा मरूँ' वाली प्रसिद्ध कविताके लेखक), मधुकर केचे (आधुनिक अभंग कविता लेखक) और कई कवयित्रियाँ—संजीवनी, इन्दिरा, पदमा आदि—की कविताकी कसीदाकारी नाजुक भाव-गीतात्मक है।

यह कहना ग़लत होगा कि मराठी कवितामें अमुक एक प्रवृत्ति ही अमुक काल-खण्डमें एकच्छत्र राज्य करती रही, बल्कि ये तीनों पक्ष बौद्धिकता, कर्मयोग-परक और भावुकताके बराबर चलते रहे। यह ज़रूर कहा जा सकता है कि सम्प्रति आधुनिकतावादी, तथाकथित बौद्धिकता-प्रधान और पश्चिमके नवीनतम काव्य-प्रयोग-शिल्पको आत्मसात् करनेकी ज़िद (मराठीमें ज़िद्दका मतलब है आग्रह) रखनेवाली कविता ही प्रधान होती जा रही है। साहित्यिक पत्रिकाएँ मराठीमें बहुत कम हैं—अकेली 'सत्यकथा' या 'आलोचना' (जिसमें कविता नहीं छपती) अपवाद हैं। 'छन्द', 'शब्द' उसी निर्वाणके रास्ते चले गये जिसपर 'अभिरुचि', 'प्रतिभा' या 'ज्योत्स्ना' गयीं। अतः कोई मार्ग नहीं है कि कविताका प्रकाशन प्रतिमास उचित रूपसे पढ़नेको मिले। इस संकलनमें 'सत्यकथा'-को ही आधार बनाया गया है। शायद अनुवादकको सब कवियोंके सब संग्रह उपलब्ध भी नहीं थे। और अनुवादककी अभिरुचिने चुनावको प्रभावित किया है। अतः इस संग्रहको पूर्णतः प्रातिनिधिक न मानकर मराठी कविताका एक उत्तम 'क्रॉस सेक्शन' प्रस्तुत करनेवाला मानना चाहिए। मैं यदि चुनाव करता तो कई कवियोंकी दूसरी कविताएँ लेता। शायद अवचेतनमें यह खयाल भी रहा हो कि कविता अनुवाद्य हो, सहज अनुवाद योग्य हो।

इससे मुझे याद आया कि मर्ढेकरकी कविताओंके उनके जीवन कालमें मैंने 'आजकल' में ('ही एक मूँगी'—हम सब चीटियाँ) और 'नयी कविता' के प्रथमांकमें और अन्यत्र जो प्रथम हिन्दी अनुवाद किये थे, उस-

पर उन्होंने कहा था, ऑल इण्डिया रेडियोकी इमारतमें। वे कहने लगे—
"मेरी कविताका अनुवाद असम्भव है। उसमें अन्तर्निहित सन्दर्भोंका—
जैसे तुकारामकी कविताका इस 'नयी कविता'—१ में सन्दर्भ जबतक
हिन्दी-भाषी पाठक न जानें तबतक रसग्रहण असम्भव होगा। इसीलिए
मैं मराठी और अँगरेजीमें अलग-अलग लिखता हूँ, कभी अपनी कविताओं-
का एक भाषासे दूसरी भाषामें अनुवाद करनेका यत्न नहीं करता।"
मर्ढेकर और तत्सम आधुनिकतावादी कवियोंकी रचनाका बहुत बड़ा भाग
भाषा-विषयक उनके प्रयोगपर निर्भर करता है। उसकी पूरी अन्त-
र्कथाएँ और अर्थछटाएँ (न्यूएन्सेज़) अन्य भाषामें उपलब्ध कराना प्राय:
असम्भव होता है। अनिलकुमारने भी मर्ढेकरकी मराठी कविताओंका
हिन्दी अनुवाद किया है और कुछ अंशोंमें (ही) सफलता पायी है। मेरा
तो यह भी मत है कि आधुनिकतावादी कविके हर शब्द, उसकी योजना,
छन्द, यहाँतक कि पंक्ति तोड़ने और लिखनेकी पद्धतिमें भी कोई सचेतन
अर्थ होता है। मैं यदि अनुवादक होता तो इन सब बातोंको ज्यों-का-त्यों
रखनेका यत्न करता। पर प्रस्तुत अनुवादककी धारणा कुछ भिन्न है (जैसे
कि उनकी 'अनुवादककी ओरसे टिप्पणी'से स्पष्ट है) पॉल वैलरी नामक
फ्रेंच कविने कहा था कि "मैं जब कविता लिखता हूँ तो एक सर्जन
(शल्य चिकित्सक) की तरह आगे बढ़ता हूँ, जो कि अपने हाथ स्टर-
लाइज़ (अशुद्ध कीटाणुओंसे मुक्त होनेके लिए साफ़ धोना) करता है, और
जिसपर काम करना हो उस क्षेत्रको तैयार करता हूँ—शाब्दिक स्थितिको
स्वच्छ बनाकर।" मर्ढेकर बहुत-कुछ ऐसा ही करते थे। उनमें शब्दोंपर
अद्भुत सामर्थ्य और उनकी मितव्ययितासे विलक्षण स्फोटक प्रभाव पैदा
करनेकी क्षमता थी। विन्दा करन्दीकरमें वह शक्ति कुछ मात्रामें है। और
उनकी पद्धतिके कवि प्रयोगशील अवस्थामें हैं। पु० शि० रेगे अपवाद हैं,
उन्होंने कलात्मक ईमान (मराठीमें अर्थ है शुद्ध कलापरक प्रामाणिकता)
रखनेका पूरा प्रयत्न किया है। मितव्ययितामें वे मर्ढेकरसे भी एक पग

आगे बढ़ते हैं और प्रयोगशीलता उनका सहज स्वभाव बन गयी है। मर्ढेकरकी तरह वह एक प्रतिज्ञा नहीं जान पड़ती।

'शिशिरागम' पर मैंने 'ज्योत्स्ना' में लिखा था। विलायतसे लौटनेपर मर्ढेकरसे सन् '३८ में पहली मुलाक़ात हुई, उन्होंने वह संग्रह मुझे भेजा था। मेरी आलोचनासे वे प्रसन्न हुए थे। वही समय था जब युरॅपमें युद्धके नगाड़े बज रहे थे, और भारतके किनारे महायुद्धकी ज्वालाएँ आकर हमारे देशके आँचलको झुलसा रही थीं। उस समय हमारे कवियोंकी प्रतिक्रियाएँ भिन्न थीं : मर्ढेकरने लिखा—"जो भी उठ खड़ा होता है, वह नेता बन जाता है। लम्बी-चौड़ी बातें करता है। हुल्लड़का नियन्ता कोई नहीं है। शब्दशूर वाचावीर। हमारे बड़े-बड़े नेता हैं, जिन्होंने प्रेतोंका बाज़ार बुलाया है। धर्मको नीलाम लगा दिया। सत्ताकी हवस बुरक़ा पहने घूम रही है। वहाँ, तुम्हें-हमें मिस्टर—सिर्फ़ मौत है। जो-जो नेता कहलाते हैं, वक़्त आनेपर वे दुम दबाकर भाग जाते हैं। पीठमें छुरा, छातीमें छर्रा—तुम्हारे और हमारे।" मर्ढेकरकी कवितामें बंगालके अकाल, हिन्दू-मुसलिम दंगे आदिकी, हिंसाको बढ़ावा देनेवालोंके प्रति जुगुप्सा आदि भाव बहुत स्पष्ट हैं, साथ ही यन्त्रयुगकी बढ़ती हुई यन्त्रीकरणवाली प्रवृत्तिका भी विरोध है। मर्ढेकर और रेगेकी कविता राजनीतिसे असम्पृक्त रही।

गत महायुद्धमें भारतीय बुद्धिजीवियोंमें राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयताके विरोधका और उससे भी बढ़कर मानवीय मूल्योंके संकटका एहसास तीव्र हो गया था। फ़ासिस्टवाद-विरोधी साम्यवादी—रॉयवादी पक्ष राजनीतिमें थे, काँग्रेस और समाजवादी पक्ष 'दिल्ली छोड़ो' और '४२ के स्वतन्त्रता-संग्राममें विरत थे। गान्धी वैयक्तिक सत्याग्रह-द्वारा हिंसा मात्रके विरोधी थे। बोरकरको छोड़कर (और वे भी पूर्णतया गान्धीवादी नहीं हैं) कोई गान्धीवादी कवि महाराष्ट्रमें नहीं हुआ। साने गुरुजी, कुसुमाग्रज, वा० रा० कान्त आदि समाजवादी और राष्ट्रीय संग्राममें पूरी तरह डूबे थे। उन्हें 'स्थण्डिलवादी' और अग्नि-सम्प्रदायके

कवि कहा गया। साम्यवादी या अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावादी विचारोंकी तरफ़ झुके हुए कवियोंमें अनिल, विन्दा करन्दीकर, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध आदि थे। अनिलकी 'निर्वासित चिनो मुलास' ऐसी ही एक उस समय प्रसिद्ध कविता थी। परन्तु क्षण-भर ऐसा बुद्धि-भेद कवियोंकी विचार-धाराओंमें उस समय जान पड़नेपर भी, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद पुनः शुद्ध साहित्य-मूल्य या विशुद्ध कवितापर आग्रह बढ़ने लगा। और आज कुछ प्रचारात्मक गीत लेखक छोड़ दें तो किसी भी मराठी कविकी रचनाओंको किसी विशिष्ट सामाजिक, राजनैतिक, विचारधारासे लेबल नहीं किया जा सकता। मराठी कविता ऐसे वादके साँचे और चौखटे कभीकी पीछे छोड़ आयी।

तो फिर बचे शुद्ध मुक्तक। क्योंकि 'रवि किरण मण्डल' वालोंके कथा-प्रधान खण्ड-काव्योंको छोड़ इधर गये पच्चीस वर्षोंमें मराठीमें किसी-ने महाकाव्य या खण्ड काव्य नहीं लिखा। 'भग्नमूर्ति' (मेरा अनुवाद अनिलके दीर्घ विश्लेषणात्मक मुक्त छन्द काव्यका साहित्य अकादेमीसे छपा है; मूल लेखन वर्ष १९४०) और 'विश्वमानव' (ना० ग० जोशी) के सिवा कोई उल्लेखनीय दीर्घकृति नहीं। मुक्तकोंमें प्रगीत और मुक्त छन्दात्मक (क्षणकी मनःस्थितिको चित्रित करनेवाले, या विचार-प्रधान, 'रिफ़्लेक्टिव') अधिक हैं। यहाँ आकर कविता-सम्बन्धी अभिरुचियोंकी विभिन्नता बढ़ जाती है। और एक समान भावसे साधारणीकृत मानदण्ड सम्भव नहीं रहता। गीत-पद्धतिने जानपद गीत और नवगीतके रूप लिये, पर वह अब छीजने लगी है।

केवल इतना कहा जा सकता है कि अनुभूतिके प्रति प्रतिश्रुति (कमिटमेण्ट) और अभिव्यंजनाके प्रति सतर्कता, सचेतनता—यही दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न कविताके मूल्यांकनमें बचे रहते हैं। सामाजिक सत्य या यथार्थके प्रति कविकी जागरूकता एक आवश्यक शर्त नहीं रहती—कविता अधिक अमूर्त बनती जाती है : दिलीप चित्रेके लिए गुरुदत्त सिने-अभि-

नेताकी मौत एक निमित्त हो सकती है विन्दा करन्दीकरके लिए 'वज्रसूक्त' में क़वायद करनेवाले लाख कंकाल। पर कवि उस सामाजिक यथार्थके बिन्दुसे आगे बढ़ता है : मंगेश पाडगाँवकर ट्रांज़िस्टरपर भोंड़े-सस्ते सिने-संगीत सुननेवालेके प्रति क्षोभ और 'केशवसुत' "कविता चार आनेमें सामने पुरानी किताबोंमें बिकती है", यह कहकर युगकी विभीषिका, मूल्योंके विघटनपर व्यंग्य-भाष्य कर सकते हैं, पर उनकी काव्यात्मा कहीं और है। यहाँ आकर अलग-अलग कवियोंकी काव्य-शैलियोंपर ही चर्चा हो सकती है। जैसे विभिन्न पुष्पोंके वर्ण-गन्ध-आकृति बन्धोंपर। कोई सामान्य नियम बनाना सम्भव नहीं।

यहीं कविताके अनुवादपर एक टिप्पणी अपनी ओरसे मुझे ज़रूरी जान पड़ती है। चूँकि मैंने इस संकलनकी भूमिका लिखी है इसलिए दिनकर सोनवलकरको अनुवाद-पद्धतिसे मैं पूर्णतः सहमत हूँ, यह नहीं मान लेना चाहिए। मैं अनुवाद करता तो शायद बहुत ही भिन्न प्रकारसे करता। सर्वोत्तम अनुवाद-पद्धति जीवित कवियोंके मामलेमें कवि और अनुवादकका 'कोलैब्रोरेशन' (सह-चिन्तन, सह-कार्य) है। जहाँ यह सम्भव नहीं, जैसे मृत कवियोंके मामलेमें, वहाँ स्वतन्त्र अनुवादकी छूट, कुछ मात्रा तक, समर्थनीय हो सकती है।

आधुनिकतम कविताका अनुवाद इसलिए भी कठिनतर होता जाता है कि उसमें वैयक्तिक या निजी बिम्ब-प्रयोगोंका व्यवहार अधिक होता है। भाषाके अनेक प्रयोगोंमें कविकी अपनी शैली और अपना उपयोग होता है। एक ही अनुवादकके लिए जैसे एक ही समय और एक साथ अनेक कवियोंकी अनेक मनःस्थितियोंसे एकाकार होना, प्रायः असम्भव होता है, वैसे ही अनेक शैलियोंकी अनुकृति भी प्रायः असम्भव होती है।

दूसरी सबसे बड़ी सीमा, अनुवादककी संवेदना और अभिव्यक्ति-क्षमताके साथ-साथ, जिस भाषामें काव्यानुवाद किया जाता है, उसकी

अपनी है। प्रत्येक भाषामें कविताकी भाषाकी एक इयत्ता होती है, कुछ 'संकेत' होते हैं, कुछ अलिखित मान्यताएँ होती हैं। मराठीमें जो शब्द सहज काव्य-भाषामें प्रयुक्त हो जाते हों, वे सम्भव है हिन्दीमें अत्यन्त अ-काव्यात्मक जान पड़ें। और इससे उलटा भी हो सकता है। यानी शुद्ध प्रतिमाओं (इमेजेज़) के लिए जो शुद्ध भाषाके घटक हैं, वे अन्य भाषा तक पहुँचते-पहुँचते काईसे भरे, लिबलिबे और लुजलुजे हो जायें, इसकी बड़ी सम्भवनीयता है। उर्दूकी बहुत-सी कविता केवल नागराक्षरोंमें लिखी जानेपर भी कई बार मुझे बड़ी अनैतिहासिक, शायद १८-१९वीं शतीकी जान पड़ती है। पर जब आधुनिक जर्मन कविताओंका या फ्रेंच कविताओं-का अनुवाद मराठी या हिन्दीमें पढ़ता हूँ तो ऐसे ही अटपटेपनका बोध होता है। रागात्मक परिपाक, आस्वाद्यमानतामें, कहीं-कहीं, भावककी मनोभूमि और बौद्धिक सतहपर भी निर्भर करता है। अनुवादकके लिए ये सब समस्याएँ काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं। मध्यप्रदेशके एक कोनेमें, दमोहमें, बैठकर दिनकर सोनवलकर इस मोहमें पड़े कि एक भाषाकी नवीनतम रचनाएँ दूसरी भाषा तक पहुँचायें, यह साहस अपने-आपमें मराठी अर्थमें 'कौतुकास्पद' है। फिर उसमें कहीं-कुछ छूट जाये, या अपनी ओरसे जुड़ जाये तो उसे वे कैसे स्वयं निर्णीत करें—वे खुद कवि जो ठहरे। मैंने उनके अनुवादोंको कहीं सुधारा नहीं है। दोनों भाषाओंके ज्ञाता उनकी आलोचना ज़रूर करेंगे कि कई जगह उन्होंने स्वतन्त्रता ली है। मुझसे यह साहस न होता। पर जैसे कविको, वैसे अनुवादकको भी कुछ स्वतन्त्रता तो देनी ही चाहिए। उसकी सीमा रस-बोधन ही हो सकती है, और वह सापेक्ष है।

मैं इस संग्रह-अनुवादका स्वागत इस नाते करता हूँ कि हिन्दीमें पुस्तकाकार अनेक नये मराठी कवियोंको एकत्र लानेका यह यत्न एक तरहसे प्रथम यत्न है। प्रथम यत्नकी भूलें इसमें होंगी और बृहत्तर प्रयत्न और बृहत्तर संग्रह इसके बाद प्रकाशित करनेकी इच्छा हिन्दीमें

जगेगी, ऐसी आशा है। क्योंकि हिन्दीको सब भारतीय भाषाओंके बीचमें 'सेतु' का कार्य करना है तो यह कार्य और भी तीव्र गतिसे बढ़ाना होगा। अँगरेज़ीमें युरॅपकी नवीनतम कविताके, अनेक भाषाओंके अनेक संग्रह समुपस्थित हैं, हिन्दीमें एक मराठी संग्रहसे क्या होगा? अनेक ऐसे 'दिनकरों' और 'प्रभाकरों' की ज़रूरत है जो अनुवादकी इस सरणि-को बढ़ायें।

— प्रभाकर माचवे

अनुवादकका वक्तव्य



दमोह (म० प्र०) यानी बुन्देलखण्डमें रहते हुए हमारे परिवारको लगभग पाँच पीढ़ियाँ हो चली हैं। फलस्वरूप बचपनसे ही हिन्दी बोलने और हिन्दी लिखने-पढ़नेके संस्कार हुए। दमोहमें न तो मराठी शिक्षाका प्रबन्ध है और न मराठीका अच्छा पुस्तकालय ही। इसलिए मातृभाषा मराठी होते हुए भी हिन्दीसे ही विशेष अनुराग रहा।

बचपनसे ही हिन्दी कविता खूब पढ़ता था। एम० ए० करनेके बाद थोड़ी-बहुत मुक्तछन्दियाँ ('तुकबन्दियाँ'के वज़नपर) भी लिखने लगा था। सन् १९६० में एक हिन्दी मासिकने मराठी अंक निकालनेकी घोषणा की और मुझसे मराठीके अनुवाद भेजनेको कहा। मैं बड़े असमंजसमें पड़ा। रचनाएँ न भेजनेका सीधा अर्थ था अपनी मातृभाषाके अज्ञानकी स्वीकृति, और इस बातके लिए मेरा अहं क़तई तैयार नहीं था। इधर-उधरसे कुछ मराठीकी पत्रिकाएँ बटोरीं और एक निबन्ध और दस कविताओंके अनुवाद भेज दिये। निबन्ध तो छपा ही, चार कविताओंके अनुवाद भी छपे। सम्पादकद्वय तथा मित्रोंने उनके सहज प्रवाहको प्रशंसा की। मेरे सामने एक नयी राह खुल गयी। भीतर कहीं सोया हुआ अनुवादक जाग पड़ा और लगा कि 'यह पथ बन्धु है।'

फिर पुस्तकें, पत्रिकाएँ, मराठी कवियोंके काव्य-संग्रह जोड़े और खरीदे भी तथा उसी मूडमें लगभग डेढ़ सौ कविताओंका अनुवाद कर डाला। फिर कवियोंसे पत्र-व्यवहार किया, प्रकाशनकी अनुमति प्राप्त की। हिन्दीको प्रायः सभी श्रेष्ठ पत्रिकाओंने वे अनुवाद सहर्ष प्रकाशित किये

और देखते-देखते मैं मराठी कविताओंका प्रस्तुतकर्ता हो गया।

स्वभावत: मैंने फिर सोचा एक संकलन ही क्यों न तैयार करूँ ? मराठी समकालीन कविताके प्रतिनिधि कवियोंकी सूची बनायी, स्वयं कवियोंने उसे स्वीकृत किया, हरेकका परिचय तैयार किया और पाँच-पाँच चुनी हुई कविताओंके अनुवाद रखे। अपने मूल रूपमें इस संग्रहमें पन्द्रह कवि और पचहत्तर कविताएँ थीं।

संकलन लेकर बम्बई गया। मूल कवियोंमें-से कुछने शर्त रखी कि "अनुमति लेनेके पहले ये बताइए कि आप पारिश्रमिक कितना देंगे ?" मैंने इस प्रश्नकी कल्पना भी नहीं की थी। मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया और मैं निराश वापस आ गया।

फिर एक वर्ष बीता। लोग अनुवादोंकी प्रशंसा मुक्त हृदयसे करते, पर ज्यों ही मैं पुस्तक रूपमें प्रकाशनकी बात चलाता और सहयोगकी प्रार्थना करता तो सभी मौन हो जाते। फिर दिल्ली गया। अकादेमी (साहित्य) वालोंने कहा कि एमरजेन्सीके कारण हमारे सारे प्रोग्राम बदल दिये गये हैं याने अर्थाभाव है। दूसरे प्रकाशकोंने भी (वैसे मुझ-जैसे साधन-सम्पर्क-विहीन नये लेखककी सामर्थ्य ही क्या थी) विशेष उत्साह नहीं दिखलाया। श्रद्धेय 'बच्चन' जीने भी कई स्थानोंपर प्रयत्न किया पर सफलता नहीं मिली।

हिन्दीवाले कह देते कि 'भाई ये तो मराठीवालोंका कर्त्तव्य है कि इसे छापें' और मराठीवाले कह देते कि अनुवाद तो हिन्दीमें है, पाठक भी हिन्दीके होंगे इसलिए हिन्दीके प्रकाशक ही यह बीड़ा उठायें। और इस तरहकी उपेक्षा, बिनमाँगी सलाहें, बड़े-बड़े उपदेश सुनते-सुनते मैं परेशान हो गया। मज़ेकी एक बात और यह कि हिन्दीमें कविता लिखनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है लेकिन प्रकाशक कविताके नामसे इस तरह नाक-भौं सिकोड़ते हैं जैसे न जानें किस वस्तुका नाम ले दिया हो !

साहित्य अकादेमीके दो भले आदमियों—श्री भारतभूषण अग्रवाल एवं

डॉ० प्रभाकर माचवे—ने परामर्श दिया कि "भारतीय ज्ञानपीठको पाण्डुलिपि भेज दो, शायद पसन्द आ जाये" यद्यपि जब वे ऐसा कह रहे थे तब भी उनके स्वरमें अस्वीकृतिकी आशंका गूँज रही थी। दमोह आकर पाण्डुलिपि श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनके अवलोकनार्थ भेज दी। उनका पहला उत्तर ही आशाजनक मिला और मैं निराशाके गहरे सागरमें डूबते-डूबते बचा।

मैंने मराठीका आधुनिक काल स्वर्गीय मर्ढेकर (लगभग १९४०) से माना है क्योंकि मर्ढेकरका कृतित्व ही नये-पुरानेके बीचकी विभाजक-रेखा है। वस्तुतः उसे मराठीकी नयी कविता कहा जाना चाहिए, किन्तु ऐसा करनेसे कुछ सीनियर कवि जैसे अनिल और रेगेको छोड़ना पड़ता क्योंकि वे नयी कविताकी रूढ़ परिभाषामें नहीं बँधते। इसी तरह बादके कुछ नये कवि भी (जो यह दावा करते हैं कि उन्होंने मर्ढेकरकी परम्पराको अपने ढंगसे विकसित किया है) संकलनमें आनेसे रह जाते। संकलनके कवि न केवल मराठी कविताकी विभिन्न धाराओं एवं प्रवृत्तियोंका प्रतिनिधित्व करते हैं बल्कि समकालीन काव्य-धाराके प्रतिष्ठित कवि हैं और कोई भी संकलन या लेख इनकी चर्चाके बिना अधूरा कहा जायेगा। चुनावका आधारभूत सिद्धान्त आधुनिक भावबोध ही रहा है इसलिए कुछ गायक गीतकार सम्मिलित नहीं किये गये।

कविताओंका चुनाव कवियोंके संग्रहों तथा प्रमुख रूपसे मराठीकी साहित्यिक पत्रिका 'सत्यकथा' (जिसे मराठीकी 'कल्पना' कहा जा सकता है) से किया गया है। कविताएँ चुननेमें इस बातका ध्यान रखा गया है कि कवि-सृजनके विभिन्न पक्ष उद्घाटित हो सकें। कुछ कविताएँ अत्यधिक लम्बी होनेके कारण छोड़नी पड़ीं जैसे मर्ढेकरकी 'शिशिरागम', अनिलकी 'निर्वासित चीनी बालकसे', शरच्चन्द्र मुक्तिबोधकी 'कविमृत्यु संवाद' या करन्दीकरकी 'वह जनता अमर है'। मेरी अपनी असमर्थतासे भी शायद कुछ ऐसी रचनाएँ छूट गयी हों जिनका होना जरूरी था। यह भी सम्भव है कि इन्हीं कवियोंकी कुछ श्रेष्ठ रचनाएँ मुझे प्राप्त ही न हो सकी हों

अर्थात् इसका दोष कवियोंका नहीं अनुवादककी साधन-विहीनताका मानना चाहिए।

अनुवादमें मेरी दृष्टि शब्दोंपर नहीं उसके अर्थपर रही है। इसलिए मूलके छन्दोंकी रक्षा प्रायः नहीं हो सकी। मेरी विनम्र सम्मति है कि छन्द छोड़ देनेपर भी मूलकी आत्माको सुरक्षित रखा जा सकता है और यथाशक्ति यह प्रयत्न मैंने किया है।

अनुवादके लिए मैंने वे ही कविताएँ चुनी हैं जिनके भावबोध तथा संवेदनाको मैं पूरी तरह ग्रहण कर पाया हूँ। अस्पष्ट, दुरूह, अमूर्त रचनाओं-में हाथ नहीं लगाया। यथासम्भव प्रयत्न किया है कि कवि-व्यक्तित्वका समग्र चित्र उभर सके। फिर भी पूर्णताका कोई दावा नहीं है। वैसे भी लोगोंको शिकायत रहेगी ही; अनुवादके दोष दिखाना शायद सबसे सरल काम है। और फिर अनुवाद तो दुधारी तलवार ठहरा।

अन्तमें एक बार फिर आदरणीय श्री लक्ष्मीचन्द्रजीके प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन कि उन्होंने अनुवादके इस अंकुरको विकसित होनेके लिए स्नेहकी छाया दी।

९ सितम्बर १९६५
दमोह (म० प्र०)

— *दिनकर सोनवलकर*

संकेतिका

•

आ० रा० देशपाण्डे 'अनिल'

(जन्म : १९०१)

अनिलने सन् १९२५ से लिखना शुरू किया और इस दृष्टिसे वे मराठीके सबसे वयोवृद्ध कवि हैं। संख्याकी दृष्टिसे कम, लेकिन गुणकी दृष्टिसे श्रेष्ठ, लिखनेवाले मराठीके इने-गिने रचनाकारोंमें उनकी गणना है।

वे मराठीमें मुक्त छन्दके प्रवर्तक हैं और कुछ आलोचक उनकी रचनापर मराठी कवि केशव सुतका प्रभाव देखते हैं। अनिल नवमानवतावादी कवि हैं। अनुभूतिकी ईमानदारी और मानवके प्रति सहज आस्थासे उनका काव्य ओतप्रोत है। गहरी अनुभूतियोंको भी सरलतासे अभिव्यक्त कर देनेका कौशल अनिलके पास है। उन्होंने सर्वत्र जनभाषा तथा सरल शैलीका प्रयोग किया है। मराठीके कुछ समीक्षक तो अनिलको ही नयी कविताका वास्तविक प्रारम्भकर्त्ता मानते हैं। उनका काव्य नया है, पर नयेपनके फ़ैशनसे आक्रान्त नहीं।

अनिलने अपने नये काव्यसंग्रह 'सांगाती'में दस पंक्तियोंवाले सॉनेट टाइप छन्दका प्रयोग किया है।

(सौ० कुसुमावती देशपाण्डे 'अनिल'की जीवनसंगिनी थीं। न केवल मराठीमें, बल्कि हिन्दी साहित्य क्षेत्रमें भी यह साहित्यिक दम्पति बड़े ही लोकप्रिय थे। नवम्बर १९६१ में कुसुमावतीजीका आकस्मिक रूपसे स्वर्गवास हो गया। अनिलका कविहृदय तबसे एकाकी है।)

रचनाएँ – फुलवात, भग्नमूर्ति, निर्वासित चिनीमुलास, पेर्तव्हा, सांगाती।

० ० ०

फ़सल

ये अँकुराये पौधे सारे
उन बेचारे हाथों में आने दो
जो मरे खपे इतने दिन।
आदमी और गाय बैल जुते सभी
बूढ़े भी, बच्चे भी।
जेठ की धूप में
आधे पेट ही घूमे बिचारे
गोबर से लीपी यह धरती
मरियल बैलों से ही
जोती गयी यह ज़मीन
'होरी' ने लँगोटी बाँधकर
पैरों से धरती को गोड़ा है
घुटने-घुटने कीचड़ में धँसकर
दिन-दिन भर झुककर
धान के अंकुर ये रोपे हैं।
ग्राम गीत की धुन पर
गुज़ार दिये दिन कितने।
कुएँ की मोट से लाये जल
आफ़तों से लड़ते, मुसीबतों से झगड़ते

ठीक समय पर की बोनी बखरनी।
तब कहीं चार महीनों में
धान के ये पौधे डोलते दिखाई दिये
बालियाँ फूटती हैं
दाने भरते आते
हवा के झोंके संग
हँसते हैं ये बिरवे
झुर्रियाँ भी खुश हैं
उम्मीदें पलती हैं
कि जिन-जिन ने श्रम किया
वे सभी खायेंगे भर पेट अन्न।
ओ री हवा
हफ़्ते भर यूँ ही बहना धीमे-धीमे
आँधियों का ज़ोर शोर मत करना
कोमल अँखुओं को मिट्टी में मिलाना मत
ओ बादल
गर्जन तर्जन लेकर व्यर्थ मत घिरो यहाँ
खलिहानों पर मत कर देना उपल वृष्टि
सिर्फ़ पन्द्रह दिन धीर धरो
अच्छे बादल राजा
ये पकी हुई धान
मेहनत का सगुन
इनको घर ले जाने दो !



अर्थ

किसी की रचना के
शब्द व्यूहों में
अर्थ खोजने तक उलझता नहीं
सिर्फ़ भाव के प्रवाह में
बहता जाता हूँ अनायास
डूबकर देखता हूँ कहाँ थाह ?
बुद्धि के हाथ तो
इधर उधर सिर्फ़ काई बटोरते हैं
उनकी उपलब्धि शून्य, आह !
किन्तु हृदय के असावधान चरण ये
उलझी हुई जीवन लताओं की
कोमल जड़ों में फँसते हैं
जितना ही छुड़ाता हूँ
फँसते ही जाते हैं
जीवन की शिराओं में ।
इस तरह, बाहर भीतर भीगकर
आता हूँ सतह पर
और, फिर भी, कुछ मिले नहीं
तो भी होता हूँ कृतार्थ ।

■

आ० रा० देशपाण्डे 'अनिल'

तटस्थ

अँधियारी रात
सागर तट, निर्जन
एकाकी मैं
पवन, निस्तब्ध, शान्त ।
जग की आँखों से, अनदेखे ऊगा-सा
अनदेखे डूबा-सा
तारा ।
अँधियारी रात, समुद्री किनारा ।
जल में छिटपुट कुछ बुलबुले
उठे मिटे
नीले द्रव्य में कुछ घुलता-सा
लहरें मुँह में समुद्री झाग लिये
रेत के कणों से कहतीं अपनी व्यथा
भटकन की आदि कथा ।
कोई किसी को जानता नहीं
देखता है, पहचानता नहीं,
सुनता है, समझता नहीं
जीता है किन्तु संवेदन-क्षमता नहीं ।

अस्तित्वों के बीच अपरिचय की खाइयाँ
ओफ़ कैसी तनहाइयाँ !
निर्वेद का यह रीता क्षण
ज्यों स्वतः की शून्यता को आँक रहा
शायद सब-कुछ तटस्थ है
मैं भी, परिवेश भी,
अँधेरी रात और सागर तट भी ।

सारे ही दीप बुझ गये कैसे ?

क्योंकर क्षीण हो गये दीप सभी ?
ज्योति बुझती-बुझती-सी लगी
कहीं नहीं है ऐसी ज्वाला
कि झुलस कर प्राण दे सके शलभ ?
सभी स्वर कैसे जड़ हो गये ?
अपनी गर्जना से जगा सके चट्टानें
कहाँ है वह प्रबल शक्ति ?
नहीं सुन पड़ता
कहीं ऐसा आवाहन
कि 'आओ रे आओ
मर मिटो इस आन पर !'
भावों में जोश नहीं
यौवन में आवेश नहीं,
संघर्ष नहीं, द्वन्द्व नहीं,
जिसके पीछे बेहिचक चल सकें
ऐसा पराक्रमी नेता नहीं
जहाँ दिया जा सके बलिदान
ऐसी समर भूमि नहीं,

प्रेत भी जो उठें जिसे सुनकर
ऐसे मन्त्रों का उद्घोष नहीं,
आशाएँ टूट गयीं
विद्रोह हुए असफल
सभी जगह तिकड़मबाज़ी
और सभी हो गये निष्प्राण-से,
क्यों हो गये निर्जीव से ?
सभी मोर्चों पर ऐसा यह सन्नाटा ?
ऊपर-नीचे ख़ामोशी
इधर-उधर ख़ामोशी
जन-मन में शून्यता
अन्तर में रिक्तता
पसलियों में भी हरकत नहीं
प्रेम में भी चमक नहीं,
सब का ध्यान आकर्षित कर ले,
आँखों में ऐसी आभा नहीं
जीवन की दिशा नहीं
तरुणाई की शक्ति नहीं
यौवन का उद्वेग नहीं
साहित्य में प्राण-शक्ति नहीं
संगीत में संकेत नहीं
कला में बोध नहीं
सरलता की क़ीमत नहीं,

सहज आचरण नहीं ।
हर एक है असहाय
असफलता से पीड़ित;
और घर-घर में भ्रष्टाचार
मैं भी चुप, तू भी चुप
और दुनियादारी के सभी सौदे
होते हैं गुपचुप ।
हर एक
अपनी जगह पर चिपका है
या फिर दूसरे की जगह अड़ाये बैठा है,
वैसे है दब्बू पर ऊपर से जमाता है रौब ।
योजना का प्रचार है
विदेशी मुद्रा का बाज़ार है
विशेषज्ञों की कमी नहीं,
पर स्व की अनुभूति नहीं,
भोगों के पीछे छोड़ दी तपस्या
दाता ही अब बन गये भिखारी,
नैतिकता चढ़ती नीलाम पर
सौन्दर्य बिकता झनकार पर
काग़ज़ की क़ीमत पर,
सभी आकृतियाँ हो गयीं विकृत
पर मन में नहीं खटकता
अभाव कुछ भी ।

सभी दीप क्षीण हो गये कैसे ?
सारे ही दीप बुझ गये कैसे ?

देर से आयी हुई बरसात

देर से आयी हुई बरसात को हथेलियों पर झेलें,
पलकों पर हौले सहेजें, मस्तक के पसीने में मिला
सिर में सींचें, और उसकी आर्द्रता पीठ पर धीरे-धीरे
गलने दें,
सूखे पड़े हुए होठ खोलकर
उसे ऊपर ही ऊपर चूमें, पी लें,
देर से आयी हुई बरसात को
उपालम्भ न दें, और न ढूँढ़ें उसके दोष
मसलन उसका बहक जाना, झूठे वायदे करना, बहाने बताना
नियत समय पर चूक जाना—
और न बतलायें उसे अपनी शिकायतें :
जैसे राह देखना, अधीर हो जाना, मन में भाँति-भाँति
की शंका-कुशंकाएँ लाना, घबराना, खुद से ही बुदबुदाना,
उसे तो, क्षितिज की बाँहें पसार कर,
लाड़ प्यार से छाती से चिपकायें,
और रंगीन पट बिछाकर, उसके साथ,
गोटियों का मजेदार खेल खेलें।



आरती प्रभु

(जन्म : १९३०)

वास्तविक नाम चि० त्र्यं० खानोलकर। आज जब अनेक नये कवि, नयी कविताके नामपर कृत्रिम एवं बेजान गद्य लिख रहे हैं तब आरती प्रभुकी रचनाएँ अपनी प्रखरता तथा सफ़ाईके कारण अलग दिखाई पड़ती हैं।

संवेदना तथा अनुभूतिकी मार्मिकता उनमें मिलती है और जीवनका सहज स्पर्श भी है।

कविने प्रकृति-चित्रोंके माध्यमसे एक यथार्थवादी जीवनदर्शन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

वे नयी पीढ़ीके अपार सम्भावनाओंवाले सशक्त रचनाकार हैं। कविताके अतिरिक्त कहानी, उपन्यास तथा एकांकी भी लिखे हैं।

रचनाएँ : कविता–जोगवा, दिवेलागण। उपन्यास–खोंगी, रात्र काली····घागर काली।

० ० ०

राह

चाँद झुका सिर पर
गाँव नियँराया हाँक पर
सो रहा होगा
तुम्हारी गोदी में लाल ।

सीधी सरल नहीं राह
आगे नदी का घुमाव,
पाँच वर्तिकाओं में से
जलती होगी एक अब तक ।

वृक्षों-वृक्षों में हवा
हिलती है ज़रा-ज़रा
झरते हो पात एक
आ जाना द्वार पर ।

अँधियारे की गाँठें : मन पर

घने बादलों में
कब से चढ़ रही है
हिमानी किनार।
गहरे अन्धकार में
कब से टीस रही है
बहरी चाँदनी।

कब से भूत लगा जैसा
नभ का यह मौन दिगम्बर।
और घूमता है बाँसों में
आर्त दुखी यह पवन कबूतर।

कब से जुड़ती हैं इस मन पर
अँधियारे की पक्की गाँठें,
कब से मन को साल रही हैं
शब्द-हीन वे भूली बातें।



तुम्हारा मन

तुम्हारा मन है
अभी
चूना है
जुही की एक कली-सा,
अभी तुम्हारे मन को
रिसना है
मधु के एक दंश से,
अभी तुम्हारे मन का
आकलन करना है
चन्द्रमा की एक कला से
अभी तुम्हारा मन
झुरझुरा जाना है
दूसरे एक मन से,
अभी तुम्हारा मन
एक उद्‌गार के उद्रेक से
प्रश्नांकित
तुम्हारा मन है
तुम्हारा ही अभी

सिर्फ़ तुम्हारे
एक 'मैं-पन' से।

देह पूजा

मेरे वस्त्र तुम्हारे हो गये।
समेट लिये पंख सभी
पंख सब समेट लिये,
चोंच से जूठे पानी की बूँदें गिरीं
गिरने की आवाज़ हुई
मैंने सुनी, हाँ हाँ सुनी मैंने
मेरे वस्त्र तुम्हारे हो गये।
सिर्फ़ रंग फीके पड़ गये
फीके पड़े रंग
चार नयन बन्द हुए
होठों से होठ मिले
मिले अधरों से अधर
मेरा-तेरा दृढ़ बन्धन
उनसे जन्म-जन्म की गाँठ बँधी
बन्धन जन्म-जन्म के।
इस अभिसार की रात्रि में
कहाँ चली झोली ले!
फूल भी सब तृप्त हैं

तृप्त हुए और झरे
अब कहाँ गन्ध मिले
अब कहाँ गालों पर चमक
आभा कहाँ कपोलों पर !
झोली में
मिलेगी क्या चाँदनी
उस झील पर ?
नहीं, नहीं,
खड़ी मत रहो तरु तले
व्यर्थ ही रुको नहीं ।
अभी चाँदनी पिघली नहीं
द्रव रूप नहीं बनी चाँदनी
मेरे वस्त्र तुम्हारे वस्त्र बने
और पवन बना तुम्हारे वस्त्र
और शरीर यह
ओले की तरह गलता है
हाय मेरे वस्त्र भींग चले
भींग चले वस्त्र ये ।
दूर वहाँ
देवता के सामने का दीपक वह
बुझता है
अरे ज्योति बुझती है
कहाँ गये तुम्हारे वस्त्र

मेरे वस्त्र ही तुम्हारे हुए
अँजुरी-भर चाँदनी से
देह की पूजा हुई
पूजा इस देह की ।

रास्ते पर का एक कवि आशावादी

गँदले जलप्रवाह में जैसे बहती हैं चप्पलें
वैसे ही दिशाहीन क़दमोंवाला नंगे पैरों भटकनेवाला तू
तपती दोपहर में, थका हुआ, रोता सिसकता चल
और भूख की सलीब पर अपना सदय हृदय टाँग दे
सूखने के लिए।
तू है एक कवि रास्ते का, गूँगी ज़ुबानवाला
अपनी मैली डायरी को नीलाम करता हुआ घूम
मगर हाय, तेरे इन पृष्ठों पर नहीं हैं हस्ताक्षर ईश्वर के
भूल जा सब-कुछ : नाक रगड़
और उठा ले टुकड़ा वह रोटी का :
तेरा मन, दृष्टि, गति, वाणी, और छिलके-जैसी त्वचा
कुल मिलाकर तू एक गधा : चुपचाप यातना सह
बड़ों की लातें और ठोकरें ख़ुद की
सब सहते हुए भी आँखों के गढ़ों में भरी हों मुसकानें।
कौओं-जैसे काले, भ्रष्ट, कोढ़ी और बीभत्स
दुनिया के बाज़ार में ये सभी हैं शुद्ध और निर्मल
इनकी पीक की तुलना में तुच्छ और मलिन है तेरी अँजुरी,
इनके सुख की तुलना में तेरा सुख भी है इतना नक़ली।

किसी लात की तरह कभी लटकेगा –
आशावाद का एक पंख और मनचाहे तैरेगा,
तब भी कुत्ते की पूँछ सदृश तेरा ईमान
दिखना चाहिए फटे पायजामे से, हिलता हुआ।
मौत आने तक रोज़ मरने का अपना व्रत
तोड़ मत देना कभी, आदमियों की तरह जीकर,
अन्तिम प्रवाह में बहता हुआ तेरा शव
समुन्दर में ही जायेगा : इस बात से निश्चिन्त रह।

इन्दिरा सन्त

(जन्म : १९१४)

मराठीकी आधुनिक कवयित्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ ।

प्राय: सभी रचनाओंमें प्रेम और विरहके सशक्त चित्र मिलते हैं। इन्दिराका बिम्ब-विधान सर्वथा मौलिक है और उनके प्रतीक ताजगीसे भरे हुए ।

कुछ आलोचकोंका मत है कि मर्ढेकरके पश्चात् मौलिक बिम्ब-विधान इन्दिराने ही प्रस्तुत किया है और उनकी परम्पराको आगे बढ़ाया है ।

उदासीकी हलकी छाया उनके व्यक्तित्वपर फैली हुई है और इस उदासीमें निर्वेदके रंग भी मिले हैं। भावनाओंको व्यक्त करनेके लिए इन्दिराने प्रकृतिका आश्रय-रूपमें प्रयोग किया है ।

वे कोमल एवं संवेदनशील रचनाकार हैं ।

रचनाएँ : कविता—शैला, मेंदी, मृगजल । कहानी—शामली, कदली, चैतू । विविध : बच्चोंके लिए नाटक, बच्चोंके लिए कविताएँ ।

निश्वास

निश्वास एक
डाली से ताज़े बकुल झर गये
निश्वास एक
भरे-भरे मेघों से
टप-टप-टप गिरी बूँदें बड़ी-बड़ी।
निश्वास एक
वृक्ष गदराया
उग आयी श्वेत सेंदुरी जड़ें लाख।
निश्वास एक
लहरों में ज्वार उठा
और क्षितिज झुक आया।
ये सब निश्वासें तेरी हैं,
मैं तो बादल को देख-देख
पागल-सी फिरती हूँ,
तूफ़ानी लहरों संग
ऊपर को जाती हूँ,
जलबूँदों की सारी सँभाल
फहर-फहर फहराने वाली

धूप का आँचल पसार
ताज़े बकुल
उसमें समेटती हूँ ।

ग्वालन

मेरे मन ने चाहा था
जी भरकर रोना
फूट-फूट रोना
पर मेरे पलकों की गागरिया
जमनाँ के जल से भी नहीं भरी ।
मेरे मन ने चाहा था
जी भरकर हँसना
मुक्त हास्य करना
पर राधा की फेंकी हुई कंकरिया
जा फँसी गले मे
और कण्ठ ही अवरुद्ध कर गयी मेरा ।
मुझे कितना कुछ कहना था
सब-कुछ कह देना था
लेकिन वह मुँह-जली बाँसुरिया
सात-सात मुखवाली
मेरे सारे स्वर निगल गयी ।
दोनों ही पंख पसारे
पक्षी की गति को धारे

दूर-दूर उड़ना चाहा था मैंने
किन्तु पैरों की कंचन ज़ंजीरों ने
मेरी छाया तक को जकड़ लिया बन्धन में।
इसीलिए
हर तरह असफल हो
कान्हा की क्रीड़ा का कन्दुक बनकर ही
मैं गहरी यमुना में कूद पड़ी
लेकिन हाय रे दुर्भाग्य क्रूर
वहाँ भी उस कालिया नाग ने
आख़िरी बाज़ी भी जीत ली

लहर

मैं कब की मिट चुकी हूँ
रात के काले कमल में
ये जो ऊपर दीखता है
वह है :
आँखें मूँदते-मूँदते
मेरी आँखों से ढला हुआ चन्द्रबिन्दु;
जिस पर
तुम्हारे आसमानी नयन उभरे हैं।
मैं कब की जल चुकी हूँ
दिन की सफ़ेद आग में,
ये जो ऊपर दीखता है
वह है :
मेरे हाथों का स्वर्ण कंकण;
जिस पर तुम्हारे हाथों की
चमकदार जिल्द चढ़ी है।
मैं कब की डूब चुकी हूँ
अनस्तित्व के जलधि में,
ये जो ऊपर दीखता है

वह है :
मेरी चँदेरी साड़ी का आँचल;
जिस पर
तुम्हारे हाथ में लगे चूने की
कालो लकीर उभरी है।

जब निकलती हूँ

तुम्हारे घर आने
जब निकलती हूँ
तब सूर्य
जल में केशर घोलता है,
और रचता है
झूलनेवाला रंगीन पुल,
दरवाज़े के पास
मुझे रोककर
दिशाएँ
बालों में
बिजली के फूल गूँथती हैं,
रात
चाँदनीवाली साड़ी पहनाती है,
और चाँद
लगाता है आँखों में काजल,
और सुबह-सुबह
सयानी ऊषा सहेली
ले आती पालकी।

■

इन्दिरा सन्त

एक शौक़

एक शौक़ था मुझे :
राह बनाते
घने जंगलों फिरते रहना,
पवन नापते
गिरि-शृंगों पर चढ़ते रहना,
मगर आज वह
शेष रहा बस
तसवीरों में दीवारों पर।
एक शौक़ था मुझे
निर्निमेष देखते रहना
पक्षी जहाज़ का,
लहरों पर झूलने का,
मगर आज वह
शेष रहा बस
स्मृति के काँचों में।
आज मुझे है शौक़ एक ही
बस अँधियारे का,
आँख मूँदकर

अन्धकार के बिन्दु सदृश
अन्धकार में ही घुलने का ।

■

कुसुमाग्रज

(जन्म : १९१२)

वास्तविक नाम : वि० वा० शिरवाडकर। आधुनिक मराठी कविताके शीर्षस्थ रचनाकारोंमें अग्रणी।

कुसुमाग्रजके काव्यमें मुख्य तीन प्रवृत्तियाँ मिलती हैं: १.सामाजिक विद्रोह और क्रान्तिका जय-जयकार, २. सूक्ष्म कल्पनापर आधारित सौन्दर्यप्रधान प्रकृति-चित्र, ३. निरन्तर एकाकी चलते रहनेका व्यक्तिनिष्ठ अन्तर्मुखी संकल्प।

कतिपय आलोचकोंने कुसुमाग्रजको 'अग्नि-सम्प्रदाय' का प्रवर्तक माना है परन्तु यह एकांगी मूल्यांकन है। उनके समग्र साहित्यके आधारपर यह कहा जा सकता है कि कुसुमाग्रजका काव्यव्यक्तित्व निरन्तर विकासशील रहा है और वे किसी एक वादकी परिभाषामें नहीं बँधते। (सुमित्रानन्दन पन्तके काव्य-विकाससे उनकी तुलना की जा सकती है।)

कविताके अतिरिक्त वे अच्छे नाटककार, सम्पादक एवं समीक्षक भी हैं। सन् १९६४ में गोवामें सम्पन्न पैंतालीसवें अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलनके वह अध्यक्ष थे।

रचनाएँ : काव्य – जीवन लहरी, विशाखा, किनारा, स्वगत, हिमसेक; उपन्यास-वैष्णव आदि।

ध्रुपद

यह सब-कुछ सच होगा
अथवा है भी
लेकिन फिर भी
मेरे गीतों की
एक ही है स्थायी टेक
कि आदमी के माथे पर
ग़रीबी से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं
धरती की पीठ पर
इतना अमंगल, इतना दुःखदायक
इतना भयानक दूसरा कोई पाप नहीं।
जब तक मेरे पास गाने के लिए शब्द हैं
शब्दों के लिए साँसें हैं
तब तक
इसी ध्रुपद की, इसी टेक की
चाह है मेरे गीतों को।
यह सब-कुछ सच होगा
अथवा है भी
लेकिन फिर भी

बरौनियों में उलझे हुए आँसू को
मत देखो परायों की तरह
यह मत कहो
कि मिट्टी के आँसू
मिलेंगे मिट्टी में ही
पत्थर की आँख का यह ओस-बिन्दु
पार कर मत चल दो आगे
क्योंकि
इस रोती हुई माटी के गर्भ में
सरसराते हैं
धरती के पाँचों खण्ड हिला देनेवाले
शेष और कालिया सरीखे हज़ारों सर्प
इन पत्थरों पर माथा धरकर सोयी हैं
लाख-लाख दावानलों की लपटें
और इस आग की नहीं है कोई संस्कृति
इन सर्पों का नहीं है कोई एक देश
देव नहीं, धर्म नहीं, नीति नहीं
इनके पास है केवल गति
अन्धी गति
अपनी ज़हरीली जिह्वाओं से
काले होठों से
जीवन के समस्त सौन्दर्य को पीनेवाली
राक्षसी गति।

धरती पर फैले मन्दिरों के अवशेषों पर से
शैया पर सोयी स्त्रियों के स्तनों पर से
पागलों की तरह दौड़नेवाली
बेहोश गति ।
गटापारचे की गुड़ियाएँ
प्लास्टिक के रंगीन खिलौनों
के भरे-पूरे संसार को
पैरों तले रौंदनेवाली
निर्दय गति ।
वह रुकती नहीं
न्याय-मन्दिरों के सामने
शान्ति-स्तूपों के सम्मुख
या आकाश-रस से भरे
साहित्य-घट के सामने
रुकती नहीं
इसीलिए कहता हूँ फिर से
कि यह सब-कुछ सच होगा
लेकिन फिर भी······।

अजनबी

हज़ार आँखों के आँसू
मेरी आँखों में भरते हैं
हज़ार कण्ठों की घोषणाएँ
मेरे कण्ठ में गूँजती हैं
हज़ार व्यक्तित्वों की वेदना
मेरी देह में जलती है
हज़ार हाथों के अभिवादन में
मेरा अहंकार गलता है
हज़ार हृदयों की तरलता से
मेरा मन भी पिघलता है
इस तरह जुड़ा है मेरा नाता
सहस्रों से।
यह सच है ;
मगर फिर भी
मैं रहता हूँ सिर्फ़ एक अजनबी
हज़ारों से दूर
कहीं विजन में
है मेरा आवास

उसमें व्याप्त है
मेरा ही मैं-पन
जो है
सिर्फ़ मेरे लिए

निराकार

इस दुःख का नहीं है कोई आकार
रंग नहीं, नाम नहीं
है वह मेरा
फिर भी मैं पहचानता नहीं उसे
और नहीं पहचानती होगी तुम भी
मुझे मालूम है सिर्फ़ इतना
तुम्हारा सुनहरा रथ दूर जाते समय
इस क्षितिज पर तैरता था
जो नीला श्वेत बादल।
उसी बादल से हुआ है जन्म
इस निराकार दुःख का
और उसी मेघ की तरह
वह भटक रहा है
आकाश के विस्तार में
खोजता हुआ अपने लिए
कोई एक नाम
कोई एक रेख
कोई एक आकार।

यात्रिक

अज्ञात के घने कुहरे में
अस्पष्टता से झूलनेवाले तेरे अस्तित्व तक
नहीं पहुँचे आज तक किसी के पग-चिह्न
नहीं पहुँच सकेंगे मेरे भी क़दम
मगर फिर भी
अप्राप्य तक पहुँचनेवाले पथ पर
मैं बढ़ रहा हूँ आगे
लगातार आगे ही।
मेरा मन गति से पागल हो चुका है
उसे नहीं रहा याद
कि कौन-सा है गन्तव्य
जिस ओर जा रहा हूँ मैं
और नहीं रही आवश्यकता
वहाँ तक पहुँचने की भी
क्योंकि
इस गति में ही
निहित है उसकी सार्थकता
उसका श्रेय;

यात्रा की अन्तिम परिणति।

बोध

मेरी अनुमति की प्रतीक्षा किये बिना
यह विराट लहर
मेरे अस्तित्व पर से गुज़रती है
तीव्र गति से
उस राक्षसी प्रवाह के भार से
मेरा दम घुटने लगता है
और अलगाव से पोषित
मेरा अहं
टुकड़े-टुकड़े होता है।
व्यक्तित्व की विशिष्टता की परतें
होने लगती हैं अस्पष्ट और रंगहीन
सान्ध्य क्षितिज की तरह।
वह विराट लहर गुज़र जाने के बाद
(और दूसरी के आने से पहले)
इस अन्तराल में
मैं देखता हूँ सामने आश्चर्यचकित;
तब होता है यह बोध
कि मैं नहीं हूँ अनेकों में एकमेव

विशिष्ट
मैं तो हूँ
अनेकों में केवल एक जन
जो है
सब में
सबका
सबके लिए।

ग० दि० माडगूळकर

(जन्म १९१९)

मराठीके प्रथम श्रेणीके गीतकार कवि तथा फ़िल्म-संसारके अत्यन्त लोकप्रिय कथा-लेखक एवं गीतकार। कोमल कल्पना, सरस शब्द-रचना और मार्मिक अभिव्यक्तिके कारण उल्लेख्य। इनके द्वारा रचित 'गीत रामायण' महाराष्ट्रके घर-घरमें गायी जाती है। उसमें रामायणके विभिन्न प्रसंगोंपर रचित सशक्त गीत हैं जिन्हें महाराष्ट्रके प्रसिद्ध गायक सुधीर फड़केने स्वर दिये हैं। माडगूलकरकी कविता और सुधीरके स्वर-माधुर्य दोनोंके मणि-कांचन संयोगसे ये गीत जनताके कण्ठमें बस गये हैं। इसके प्रभावका अन्दाज़ा इसी बातसे लगाया जा सकता है कि उसके अनुकरणपर लोगोंने 'कृष्णगीतायन' और 'शिवायन'की रचनाएँ कीं मगर इनमें न तो मूलका सौन्दर्य आया और न उसका प्रभाव।

('गीत रामायण'का एकाध गीत अनुवाद रूपमें देना चाहता था पर वह मात्र पठनीय ही होता जब कि 'गीत रामायण'का यथार्थ आनन्द उसकी श्रव्यतामें है।)

माडगूलकर अच्छे कहानी लेखक भी हैं।

रचनाएँ : काव्य—सुगन्धवीणा, जोगिया, चित्रगीत; कथा—वेग, लपलेला ओघ।

० ० ०

मूर्ति भंग

'अँधियारे पर उजियारे से कुछ लिखें
और वही हो जाये अ-क्षर'—
सिर्फ़ इसीलिए दौड़ थी उसकी।
उसका अश्व दुर्निवार था
बेलगाम।
उसने तुझसे की थी याचना
कि मिल जाये लगाम
पक्की और मज़बूत।
तू ने ऐसी कुछ खैंच दी लगाम
कि घुड़दौड़ ही रुक गयी।
सन्तुलन बिगड़ा
गिर पड़ा अश्वारोही
हो गया निष्प्राण।
कालिख पर चमका कुछ सफ़ेद
मगर उसे आभा से
अन्धकार का अस्तित्व
हो गया और भी भयावना।
आज तक

हम ऐसी ही अश्वारूढ़ मूर्तियों को
करते आये हैं पूजा
उन्हें तू ने ही किया चकनाचूर
तू मूर्तिभंजक है
    मूर्तिभंजक है
    मूर्तिभंजक है।

कोमल भावना

मेरी कोमल भावना को ठुकरा दे तू चाहे
तहस-नहस कर दफ़ना दे ज़मीन में
मगर वही ऊगेगी बनकर कोमल लता
तेरे आँगन में, जिस पर रीझेगा वसन्त ।

मेरी कोमल भावना को कुचल दे पैरों से
और डुबा दे चाहे तू अथाह सागर में
मगर वही उभरेगी बनकर छोटी नौका
और तुझे ले जायेगी दुःख के पार ।

मेरी कोमल भावना को हाथों से मसल के
फेंक दे चाहे गुस्से से जलती लपटों में
मगर वही चमकेगी ज्योति रूप धरकर
भर देगी प्रकाश तेरे अँधियारे जीवन में ।

मेरी कोमल भावना को धूल में मिला के
फेंक दे चाहे तू चंचल हवाओं में
मगर वही विकसेगी नया अंकुर बन के
तेरी खिड़की के पास गायेगी गीत नया ।

ग० दि० माडगूलकर

मेरी कोमल भावना को गुस्से से पागल हो
फेंक दे चाहे तू मीलों दूर आकाश में
मगर वही पा लेगी मेघों का रूप-रंग
और तेरे आँगन सावन में बरसेगी।

मेरी कोमल भावना
महाभूतों की तरह नश्वर
उसे दे सकेगी चेतना
केवल तेरी प्रीत।

तेरे प्रेम के बिना
यह कोमलता ही
बनेगी कठोरता
और भटकेगी जन्म-जन्मान्तर तक।

सन्तों की परम्परा

संसार में मैंने उगायी
तुलसी की फ़सल
उसका रक्षक है
साँवला पाण्डुरंग।

कृपारूपी कुएँ पर
चलाता हूँ मोट
रोज सींचता हूँ
वैराग्य के पाट।

स्वयं बैल बन कर
रौदता हूँ वेद
उड़ावनी करता हूँ
श्रुति, स्मृति की।

शान से झूमती हैं
काली मंजरियाँ
मन में नहीं है
फल की कामना।

बारहों मास यहाँ
रहती है समृद्धि

आये कलजुग
बैठाऊँगा सादर ।

जन्म - मरण का
नहीं रहा भय
मेरी यह फ़सल
जीत लेगी मोक्ष को भी ।

वरदान या अभिशाप

सुख की खोज में मिलता है दुख
कहूँ इसे वरदान
या कहूँ इसे अभिशाप ?
पूर्व दिशा में ऊगा दिनकर
विश्व पूजता हाथ जोड़कर
मेरी आँखों को दिखता ढलनेवाला दिनमान···

चन्द्रकिरण बिखरी धरती पर
वातावरण शान्त और निस्वर
मेरे श्रवण किन्तु सुनते हैं विरह-व्यथा का गान···

शान्त लहर पर नाव चलाता
यौवन नाविक हाथ बढ़ाता
मेरे मन में घुमड़ रहा है भीषण तूफ़ान···

खेतों में लो फ़सल उगाकर
कृषक गा रहा गीत झूमकर
पर अकाल की आशंका से डरते मेरे प्राण···

आँगन में ये बाल कन्हैया
नाच रहे हैं ता-ता-थैया
उनकी भावी दरिद्रता कर जाती है बेमान•••

रिमझिम-रिमझिम बजती पायल
नृत्य कर रहा सबको घायल
मुझे दुखी करता समाज में गणिका का अपमान•••

देश-प्रेम में हुआ दिवाना
मिला मुझे शहीद पुराना
देख रहा हूँ उसके बच्चे कण-कण को हैरान•••



अस्पताल

तेज़ बुख़ार में तड़पता है दिन
सिरहानें जागती है रात
उसके आधे अंग हैं कोढ़ से सफ़ेद
और उसे बीमारी है अ-निद्रा की ।

विज्ञान को हो गया है धनुर्वात
भर गया है आसुरी बल उसके अंगों में
उसे सँभालने में खुद गिर पड़ी नैतिकता
टूट गये दाँत, फूट गया माथा ।

अध्यात्म को आने लगे चक्कर
उसके वारिस बैठे हैं मातमी सूरत लिये
मगर जानता है मरनेवाला अच्छी तरह
कि उसमें से एक भी लेगा नहीं दायित्व उसका ।

अस्पताल की काली नर्सें
पहने हैं सफ़ेद साड़ियाँ
अचेत जनों के स्वप्न चुरा के
अपने मन में महल रच रहीं ।

ग० दि० माडगूलकर

नाइट ड्यूटी वाला डॉक्टर
बैठा है आराम-कुरसी पर
उसके निर्भय नेत्र बन्द हैं
पर नहीं जानता वह भी
क्या है उसकी नियति ?

कुरसी के सम्मुख
एक तिपाई
ख़ाली शीशी, जूठा गिलास
बोतल पर चिपका है लेबल
'उम्मीदों का'
शायद धन्वन्तरि भी
मदिरा पीकर
हुए बावले ?

दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे

नयी कविताके नये प्रतिभाशाली रचनाकार। आधुनिकताका तीव्रतम बोध चित्रेमें मिलता है। इनपर मर्ढेकरका स्पष्ट प्रभाव है, साथ ही पश्चिमी विचारकों, कवियों (रिल्के) से प्रेरणा ग्रहण की है।

चित्रेने मराठीकी नयी कविताको नये उपमान, सार्वदेशिक प्रतीक एवं नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। उन्होंने काव्यमें आयामोंकी खोज, विस्तार और गहराई लानेका प्रयास किया है।

चित्रेका कवि एक ऐसी व्याकुल आत्मा है जो माध्यमकी खोजमें देश-देशान्तरोंमें भटक रही है। वे चरम बुद्धिवादी हैं और अपने तटस्थ दृष्टिकोणके लिए विख्यात हैं। चित्रेकी कविता नये पाठकों तथा समीक्षकोंके बीच चर्चाका विषय है।

रचनाएँ : कविता—'कविता'।

o o o

हिलते पीपल के पत्तों में

हिलते पोपल के पत्तों में
नील आकाश से बहनेवाली हवा नज़र आती है।
उसकी सरसराहट में
बादलों के बीच का मौन मुखर होता है।
आख़िर किसकी अँजुरी से गलती है साँझ यह ?
और किसके गालों पर थिरकते हैं तारे ये हेमन्ती रात के ?
और अब, इसो गति-क्रम से महोने, एक पर एक,
चरण पर चरण धरते हुए बढ़ते हैं,
इसी लय से वर्षों के वृत्त होते हैं रूपायित।
इसी सापेक्षता से दर्द-कातर क्षणों को चूमता है
और जो-जो कुछ रीतना था इस प्रक्रिया में
वही सभी भरता जाता है लबालब।

कभी आँधियाँ और बिजलियों की गाँठें छूटती हैं।
कभी ऊँची लहरें तटों पर फेंक देतो हैं सीपी और शंख।
कभी समुद्र बिसरा देता है रेतोले किनारों को,
पता नहीं, कब कहाँ और किसके सम्बन्ध टूटते और जुड़ते हैं।
लाख-लाख सूर्यों के सिकता कण जिसमें से गलते जाते,

ऐसी वह अद्‌भुत समय-घड़ी
और क्षण-क्षण को गिननेवाला मैं स्तब्ध मौन,
मेरा स्वगत-कथन और मेरा मन्त्र ।



कोसों तक दूर फैला हुआ सूनापन

कोसों तक दूर फैला हुआ सूनापन
यह किसकी है फैली हुई रेत ?
भन-भन, सन-सन घूमनेवाली हवा के नाद में
ये अदेखे अन्तर किसके हैं ?
नीले आकाश के घने आच्छादन से
मेरी दृष्टि पगलाने लगती है
और अन्तर के शहद के छत्ते
दुख के वृक्ष पर चू रहे हैं
दूर—दूर, सुनसान में कोस पर कोस
यह कैसा आक्रोश ?
निर्वेद की अन्तिम मर्यादा का
कर्ण कटु कण्ठशोष ।
'नहीं चाहिए' 'नहीं चाहिए' 'नहीं चाहिए'
हृदय की गति पर, साँसों की ताल पर
यह पुकार 'कहाँ' 'कहाँ' 'कहाँ' ?
क्षितिज फैलते हैं
एकान्त क्षणों का
एक विकराल वृत्त बनता है ।

■

धूसर गोधूलि में देखी हुई धुँधली आकृतियाँ

धूसर, गोधूलि में देखी हुई धुँधली आकृतियाँ
और उनकी रहस्यमय हलचलें
आँखों में फैलती हैं
और आँखों को भूलती हैं।
पग-पग पर कितने ही रास्ते फूटते हैं
मन की इच्छाओं के कितने ही प्रारूप
होते हैं अर्थहीन।
कैसा अजीब सुन पड़ता है
कोलाहल के बीच
पक्षियों का बेवक़्त चहचहाना ?
अब तो चाहिए केवल ऐसी हृदयहीनता
ऐसी जड़ता
जिसकी रिक्तता किसी भी स्वर से भर जाये;
नहीं चाहिए उर के स्पन्दन
या पीड़ा के छन्द अब।
आकाश भी छोटा पड़े,
ऐसा सूक्ष्म नाद
चाहिए मुझे।



स्वरों को पार करते काल के घनत्व को चीर कर

स्वरों को पार करते,
काल के घँनत्व को चीर कर
कालातीत बनते हुए
निर्वेद में लीन होती हुई तानों में गूँजते,
घने अन्धकार में चमकनेवाले
क्षणों की राह
वेदना की गति,
समस्त ब्रह्माण्ड में ध्वनित हो कर
दिशाओं को भेद कर
फैलनेवाला सर्वव्यापी आवेग
'चल पड़ो' 'चल पड़ो'—
संवेदना की नोक पर स्थिर, थमी
प्राणों की यह भ्रमरी
दिग्भ्रमित विचारों के भँवर में फँसी है
दिक् और काल के कम्पन
रक्त-प्रवाह में से लहरते हैं
गति के सात-सात क्षितिज नापनेवाली यह पुकार
'चल पड़ो' 'चल पड़ो'। ■

दि० पु० चित्रे

नरक के हरे उजाले में बहती हैं

नरक के हरे रंग उजाले में और
बरसात की रात वाले शहर में
बहती हैं मेरी आँखें।
बिजली में पूरी तरह भीगे हुए वस्तुशिल्प के पिशाच
वातावरण के लहरदार लैन्स में क्रीड़ा करते हैं।
मेरे शरीर पर प्रकाश का एक बिन्दु उगता है
और मेरा हृदय धड़कने लगता है
अँधेरे में ढूँढ़ता हूँ मैं खुद की पलकें
और मेरा अपना शरीर ही अजनबी बन जाता है।
शून्य की फिरकनी से अँधेरे की कोढ़ उठती है
मेरे तन में,
और मेरी सफ़ेद विश्रृंखल हड्डियाँ उसमें धोयी जाती हैं
और फिर, बुझी हुई तीलियों की तरह
वे रास्तों पर खो जाती हैं।
किसी आत्महत्या के समाचार की तरह
मैं फैलता हूँ
और आकाश से शीर्षक बरसते हैं।



ना० घ० देशपाण्डे

(जन्म : १९०९)

मूल रूपसे लोकप्रिय गीतकार। बादमें नयी कविताएँ भी लिखने लगे हैं। प्रेमकी मधुर कविताएँ भी लिखी हैं।

देशपाण्डे विदर्भ अंचलके कवि हैं और ग्रामीण जीवन एवं वातावरणसे युक्त इनकी रचनाएँ 'सुगी', 'घनगरीगाणं' तथा 'मोटकरी' संग्रहोंमें संकलित हैं। रचनाओंमें नाद-सौन्दर्य, अलंकार-सज्जा तथा अर्थगाम्भीर्यकी त्रिवेणी बहती है। कहीं-कहीं पौराणिक सन्दर्भ भी मिलते हैं। अनुभूतिके प्रति ईमानदारीको वे कविका सबसे बड़ा गुण मानते हैं।

रचनाएँ : कविता – शील।

० ०

मेरे मन की व्यथा

रात काली कलूटी
और ऊपर, रह-रह के चमकने वाली
उसकी क़ातिल आँखें।
नीचे वन्ध्या भूमि पर
खड़ा है ताड़ वृक्ष।
उसके पत्ते
शोक-कथा कहते-सुनते
पास ही दिख पड़ती
एक गाय : चुपचाप जुगाली करती
शायद, तिमिर को निगलती है।
रुक-रुक कर, सूखी घास को
तोड़ती, चबाती है।
फड़-फड़ का स्वर
व्याकुल अन्तर।
काँप उठा ताड़ वृक्ष
उसके हृदय से
चीत्कार करता हुआ
अँधेरे को चीरता हुआ

पंछी एक उड़ गया ।
मेरी सूजी हुई आँखों में
नींद कहाँ ?
शायद : चार का समय है ।
ओ मेरे सहचर
तुझसे कैसे कहूँ
अपनी कथा
उस ताड़ वृक्ष से पूछो
मेरे मन की व्यथा ।



मुझे अभी जीना है

सूखी इस धरती पर
सावन की रिमझिम फुहारों से
इधर-उधर ऊग रहे अंकुर जो
उनके ही बीच मुझे जीना है।

सतरंगे, भीगे उस आँचल का
कोमल स्पर्श वह
घने काले बालों का जूड़ा
देता है मादक-सी गन्ध जो,
वहाँ मुझे जीना है।

पराजित थके मन में
पर्वत-सी समस्या, राई के तुल्य बनो
किन्तु ईर्ष्या की ऊँची लहरें
नीचे झुक नहीं सकीं,
फिर भी मुझे जीना है।

ना० घ० देशपाण्डे

मुखौटा

चढ़ता जाता है दिन और
धूप के साथ-साथ
जलता है विस्मृतियों का धुँधलका,
पलकों पर जगी हुई रातों का भारीपन
बुझा हुआ दिया, कुचली हुई सेज,
तन अलसाया-सा,
कोढ़ फूटा हो जिन पर
ऐसी फीकी और उदास दीवारें।
गर्द से भरे हुए कमरे में
काले छप्पर पर ऊँचा लटकता हुआ जाला
रह-रह के हिलता है
चमकने वाले ओसबिन्दु भी
पत्तों पर सूखते जाते,
खिड़की के बाहर
धूल फेंकने और फाँकने का वही खेल चलता है।
अन्दर सब सूनसान, सुस्ती
सिर्फ़ घड़ी में ही हलचल है।
उठने की स्फूर्ति नहीं

फिर भी उठना ही लाज़िमी है,
रास्तों पर दूर-दूर से सुन पड़ते
झूठे धोखेबाज़ नारे,
द्वार खोल कर
छीना-झपटी के इस असमाप्त कोलाहल में
घुसना ही पड़ेगा।
होठों में, भरे हुए दिवसों की मौन व्यथा दाब कर,
चलो, पहनें
हँसनेवाला अलग रखा हुआ वह मुखौटा।



यों ही

अब रात
गहरी काली हो गयी है
और वृक्षों को
ढँक लिया है अँधेरे ने
अब सो गयी है सारी दुनिया
बचे हैं सिर्फ़ तारे।
किसी का बन्धन या मर्यादा नहीं बची
अब मन में आता है
कि यों ही
गाऊँ एक मधुर गीत।

आँचल

गहन अन्धकार में छिप कर
अन्तर में गहरे उतर कर
प्रणय की स्मृति वह
रखी थी सहेज कर।
उसी अन्धकार पर बहने लगे, अकस्मात्
जान-बूझ कर फेंके हुए
उजियाले के प्रपात।
दहन पर्व होता है,
शब्दों की आरी, चीरती हुई,
आर-पार चलती है।
दृष्टि फँसती है, चाँदनी के जाल में
जीवन भटकता है,
टूटे सब स्वप्न लिये थाल में ?
वेदनाओं का पीपल ऊगता है
शाखाएँ फैला कर
अपनी जड़ें हृदय में जमाता है।
अब भी थर-थर
काँपते अधर विह्वल

हाथों में बचा हाय
अदृश्य उर्वशी का आँचल ।

पु० शि० रेगे

(जन्म : १९०६)

मराठोके सोनियर कवि।

रेगेकी कविता रेखा-प्रधान होती है। और उनके चित्र साफ़-सुथरे तथा कटे-छँटे। अर्थकी दृष्टिसे इनकी रचनाएँ सांकेतिक होती हैं। कभी-कभी पाठकोंकी ओरसे दुर्बोधताका आरोप भी उसपर लगाया गया है। ऐन्द्रिक अनुभवोंको विलक्षण सुघरता तथा कोमलतासे अभिव्यक्त करते हैं। रेगे श्रृंगारके रसपूर्ण कवि हैं और उम्रकी दृष्टिसे पुराने होनेपर भी नये प्रयोग करनेके लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

रेगे कुछ समय सुप्रसिद्ध मराठी त्रैमासिक 'छन्द' के सम्पादक रहे। कविके अतिरिक्त श्रेष्ठ समीक्षक एवं सौन्दर्यशास्त्र-के गम्भीर अध्येता हैं। और 'रूपकथ्थक' नामसे कहानियाँ तथा नाटक भी लिखे हैं।

रचनाएँ : कविता – साधना और अन्य कविताएँ, फुलोरा, दोला, गन्धरेखा, पुष्कला।

० ० ०

जब कभी

जब कभो
हवा के झोंके के साथ
दूर झाड़ियों से
शोत की एक लहर
गरम किये हुए तार-सी
छू जातो है,
तब मैं सद्यःस्नाता
खिड़की के पास खड़ी हुई होतो हूँ,
अंगों पर उमड़ी हुई
गरमाई की अनुभूति के कारण
मुझे कुछ भी नहीं सूझता ।
फिर
हर रोज़ आनेवाली शाम को
खड़े-खड़े ही
गरम किये हुए तार की वह लहर
मैं अपने इर्द-गिर्द लपेट लेती हूँ
जैसे विद्युत् की लता हो,

अब
मेरे अंग-अंग पर खिले हैं
शत-शत फूल
और मेरे दोनों हाथ
अपने ही वक्ष पर रखे,
शान्त, एक पर एक
दुखते हैं, टीसते हैं।

■

आईना

आईना
सब-कुछ देखता है मगर ठीक उलटा
यहाँ का सब-कुछ उठा लेता है
अपने हिसाब से
दाहिना-बायाँ अनजाने ही पलट देता है
और फिर भी अपनी ओर का सभी-कुछ
रखता है छिपा कर
एक बँधी हुई चौखट में।
उसकी दिशाएँ दूसरी हैं
कँगूरे कटे हुए
रेखाएँ सूक्ष्म ज्यामिति की तरह
बिम्ब और प्रकाश जितनी ज़रूरत हो उतना ही।
प्रथम मिलन की अपार दर्शक दीवार के पीछे से
सुन पड़ते हैं मुँह चिढ़ानेवाली आकृतियों के अस्तित्व
और वहीं पीछे से
उभरते हैं कभी न देखे गये चेहरे
उनकी आसक्ति, उनकी ईर्ष्या
उनका संघर्ष और छल

पु० शि० रेगे

उनके रोमांच
खोये हुए रंगों की भीड़ में ।

फ़ौलाद

उसके कसदार फ़ौलादी अधरों पर
खिलता है जब नील कमल
तब उसकी एक पंखुरी पर स्पष्ट
सुई की नोक के बराबर
जो रक्त-बिन्दु दीखता है
वह मेरा ।

उत्सव वह मेरा
जाओ जाकर कहो उसे
फ़ौलाद की कड़ी बन्दिशों में भी ।

अर्थ

और बैठने पर
उसका हाथ हाथ में लेते समय
दूरी का हिसाब मत लगाओ
काल की एक अजीब आदत है :
फिर से पीछे लौटने की
सिर्फ़ देखो दूर डूबते हुए को,
बादलों की परछाइयाँ भी
रंगीन दिखाई देंगी
कुछ पूछो मत
कहो मत कुछ भी।
नीचे बारीक फैली हुई रेत है
उसमें भी घूमने दो उँगलियाँ।
यहीं से अब
सब प्रश्नों को अर्थ है।



वृक्षों को मालूम है सब-कुछ

वृक्षों को मालूम है सब-कुछ
कि कब बरसात भिगोयेगी,
कब धूप रोकेगी,
कब पवन पुकारेगा,
मुझे जैसे –
तुम्हारी राह देखते हुए
मसके हुए पूरब से यहाँ
दूसरी ओर घूमते-मुड़ते
दीर्घ फैले पश्चिम के क्षितिज तक।

और हठीली
–(जड़ों में जड़ें उलझा कर)–
भिड़ी हुई कपूर-सी रात्रि में
मेरे तन में लाख-लाख रक्त-पुष्प
तेरे ही लिए
तेरे ही –
– लिए

वृक्षों को मालूम है सब-कुछ।



सौ० पद्मा गोले। मराठी नयी कविताकी दूसरी प्रमुख कवयित्री। इन्होंने दाम्पत्य-प्रेमके अकुण्ठित चित्र प्रस्तुत किये हैं। नयी कविताकी सशक्त रचनाकार हैं जिनसे मराठी पाठकों को बड़ी आशाएँ हैं।

रचनाएँ : कविता—नीहार, स्वप्नजा।

माँ बनने पर

ओ माँ, अब समझ में आया है अर्थ
तेरी वेदना का
और हुई अनुभूति
तेरे नाज़ुक दुःखों की, सुखों की ।
ओ माँ, अब मिली वह दृष्टि
जिससे देख सकूँ
तेरी ममतामयी आँखों में
धूप-छाँव का खेल;
अब ये श्रवण
मूक सिसकियाँ सुनने के लिए
संवेदन-क्षम बन गये हैं,
और मेरा मन भी
समझने लगा है अर्थ उनका ।
अब तेरी वात्सल्यमयी दृष्टि से
देखती हूँ सृष्टि को,
ओर मेरा लाल
लगता है सौन्दर्य का अवतार,
तेरे असीम दुलार से

सुख-दुःख को तौलती हूँ
अब बेटे के सुख में ही
केन्द्रित है सुख मेरा।
बड़े भाग से
तेरा पागल मन मुझे भी मिल गया
और उसी से मिली
इस जीवन को पूर्णता,
अपने रतन को
कलेजे से लगाते ही
हृदय भर-भर आता है
और जी में आता है
कि फिर से मिले
वह बचपन मुझको।

कभी-कभी

कभी होके उर्वशी
अपने श्रृंगार से रिझाऊँ तुझे,
कभी बनके तपस्या तेरी
सांसारिक मोह से बचाऊँ तुझे,
कभी-कभी बनके राधा
तेरी बंसी से बावरी हो जाऊँ,
कभी रुक्मिणी बनके
पत्र में प्रेम-भरा आमन्त्रण पहुँचाऊँ,
कभी-कभी यज्ञ में सती हो कर
उमा के स्वरूप में तुझे वरूँ,
सावित्री बन कर कभी तेरे लिए
यम से भी हँसते-हँसते लड़ूँ,
और कभी ओ पुरुष निर्दयी
तुझे राम-सदृश देखूँ
और भूमिगता सीता बन कर
तुझे एकाकी रुलाऊँ।

मन मेरा

उफ़नती लहरों का
हरियाले जल-भरे किनारों का
सुनहरी राहों का,
मन मेरा।

सर्द, ठहरे सितारों का
वासन्ती झकोरों का
अतिचंचल पारे-सा
मन मेरा।

मेरा मन सान्ध्य-मेघ
गहरा नीला सरोवर
कमल का कोमल पराग
मन मेरा।

यह श्यामल गली मार्ग
राधा का प्रणय-राग
सीता की आकुलता
मन मेरा।

गरुड़ के पंखों का
नास्तिक के प्रश्नों का
सर्प के दंश का
मन मेरा।

दुनिया भर में ज़िद्दी, अड़ा
शराबी, छँटा हुआ
छिन रूठे, छिन हँसे
मन मेरा।

इस तरह नहीं जाना

यात्रा पर निकले तुम
और मेरा मन घबराया
सुबह से ही।
तुम्हारी ज़रूरी चीज़ें बटोरती हूँ
पर मन नहीं सँभलता है
मधुर बेतरतीब चीज़ें बिखेरता है
तुम्हारा कन्धा हाथ में आता है
अपने बालों पर फेरती हूँ
और सिहर-सिहर उठती हूँ।
ठीक से तह करके
तुम्हारी कमीज़ें सूटकेस में रखती हूँ
और अजाने ही
टेक देती हूँ माथा उन पर,
अरे नहीं, उन पर
मेरे कुंकुम की छाप उभर आयेगी,
और मित्र करेंगे मज़ाक़ !
पुस्तक में क्या देखूँ ?
मेरी-तुम्हारी तसवीर

उसमें बैठे तुम भी
यों हँसते हो मुझ पर,
वहाँ दूर बैठ कर
मत देखो घूर कर,
नहीं—नहीं
ऐसे में नहीं जाना
इस तरह नहीं जाना ।

एक क्षण आता है

एक क्षण आता है
हेमन्त की साँझ-सा
धूसर, गन्ध-भरी रात में
बिलम जाने को उत्सुक
ऐसा एक क्षण आता है
कभी भी अकस्मात्, अनजाना,
उसी क्षण
तुम मेरे पास होते हुए भी
मैं ही नहीं होती तुम्हारे निकट,
मैं होती हूँ दूर-दूर
तुम्हारे भीतर की सीमाएँ तोड़कर
बाहर आनेवाली
अनुभूतियों के पीछे भागती फिरती हूँ मैं।
मेरे सम्मुख बैठे तुम
कुछ भी बुदबुदाते हो
शायद
मद-भरे, प्रणय-सिक्त शब्द वे,
शब्दों से रस की बूँदें

आसपास झरती हैं,
लेकिन मेरे ये श्रुतिपट
होते हैं दूर
बहुत दूर कहीं
तेरी अवाक् शक्ति
और अन्त के मौन बीच
जो साँठ-गाँठ चलती है,
उसी की टोह में
मेरा मन दौड़-दौड़ जाता है।
कान्हा की मुरलिया पर
बावरिया राधा का मन जैसे।
बैठ कर मेरे निकट
तुम मुझको निहारते हो,
आषाढ़ी मेघ-से
भरे हुए नयनों से
मैं भी तुम्हें देखती हूँ
शायद नहीं भी देखती
फिर भी दृष्टि मेरी
केन्द्रित हो जाती है
तेरी उन नज़रों पर
जो मुझसे मेरा मैं-पन
बाहर को खींचती हैं,
इसलिए कि उसमें

तेरा अस्तित्व-बोध घुल सके ।
वासन्ती पवन की
शक्तिशाली भुजाओं-सा
तुम मेरा आलिंगन करते हो,
पर मैं उनसे झट छूट कर
पहले ही दूर चली जाती हूँ
तुम्हारी उन बाँहों में
जो मुझे ऊपर-ही-ऊपर उछालती हैं
गरुड़ की उड़ान-सा,
जाने किस अप्राप्य की कांक्षा में ?
और ऐसे ही किसी क्षण में
तुम पास होते हुए भी
तुम्हारे न होने का बोध होता है,
शायद तुम सचमुच ही पास नहीं होते
या शायद तुम भी
मेरे ही समान
कहीं दूर भटकते रहते हो,
मेरी ही खोज में
मैं जो स्वयं भटकती फिरती हूँ
अचीन्ही पगडण्डियों पर
अजानी दिशाओं में ।
और तब
धूमिल गन्ध-भरी रात में

वह अनाहूत क्षण
ख़ुद-ब-ख़ुद रीत-रीत जाता है
जैसे एकान्त में
निःश्वासें छोड़ते
कपूर जलता है—
अनसूँघे ग़लता है।

बा० भ० बोरकर

(जन्म : १९१०)

गोआ के सुपरिचित गीतकार ।

बोरकर काँग्रेसके प्रमुख कार्यकर्ता रहे हैं। मूलतः गीतकार हैं, पर उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। कवि होनेके अतिरिक्त वे उपन्यासकार, कथा-लेखक और निबन्ध-लेखक भी हैं। अनेक भाषाओंके ज्ञाता हैं। न केवल भारतीय बल्कि विदेशी भाषाएँ भी आती हैं।

बोरकर मानव जीवन और सौन्दर्यके कवि हैं। लोक-जीवनकी सहजता और सरसता उनकी रचनाओंमें मिलती है। उन्होंने गोआके निवासी, वहाँकी भाषा एवं संस्कारोंका निकटसे अध्ययन किया है। उनपर मराठीके प्रसिद्ध कवि ताम्बेका प्रभाव है।

बोरकर प्रणय-गीतोंके गायक हैं। नाद-सौन्दर्य तथा भाषाके लालित्यपर विशेष ध्यान रखते हैं। यद्यपि राजनैतिक और सामाजिक विषयोंपर भी उन्होंने लिखा है पर बोरकरकी कवि-आत्मा प्रेमके क्षेत्रमें ही अपना सही विकास कर पाती है। फिर चाहे यह प्रेम लौकिक हो; चाहे आध्यात्मिक।

रचानाएँ : कविता—प्रतिभा, जीवनसंगीत, आनन्द भैरवी, चित्र वीणा।

वह एक याद

तेज़ ऊँची .लहरें तट की रेत पर फेंकती हैं सफ़ेद झाग,
न दुःख, न पछतावा, महज़ वो एक याद ही काफ़ी है ।
ऐसी ही बेहोशी के क्षण में, साँझ में ख़ुशबू-भरी,
भीनी हवा बहती थी,
टीले के•पास,
वट-वृक्ष के पीछे से, ऊग रहा था दूज का चाँद ।
सामने का जल शान्त था, तुम्हारा आँचल भी अचंचल था,
मन में वासन्ती यादों के घरौंदे वनते थे, मिटते थे ।
अन्तर में गूँजता था गीत, होठों पर छलका था अमृत,
तुम्हें पास खींच के थोड़ा-सा,
कहा मैंने 'गा दो न गीत प्रिये'
उभरे उरोज सँभाल, घबरा के तुम हट गयी एक ओर,
रूठ गयी : और मुझे भी रूठता देख, ठहर गयी मोड़ पर ।
कभी देखती आसपास, कभी नज़र सितारों पर
शायद होठों पर उतार रही थी मेरी धुँधली परछाईं ।
फिर कोहरा छा गया घना-घना,
धुल कर बह गयी चाँदनी,
अपने सौन्दर्य के साथ, तुम कब चली गयी,

मुझको मालूम नहीं ।
आज भी उस क्षण की सुगन्ध फैलती है,
चाँद भी जल में झाँकता है,
न दुःख, न पछतावा,
महज़ वो एक याद ही काफ़ी है ।

साँझ

डाली की तरह झुक आती है साँझ,
जामुनों-जैसे पकते हैं बादल,
हवा में ठण्डक भर कर होती है सख्त
और दुनिया हो आती है अलसायी-सी
समूचे आसमान में समायी हुई स्मृतियों के समूह
झाड़ियों में पैठते हैं स्तर पर स्तर :
गीला अन्धकार :
आँसुओं के जुगनू बुझाता चमकाता हुआ आता है।
ऐसे क्षणों में,
दूर का दिया, लहरों पर बह कर आता है पास,
तारों को छेड़ता हुआ,
उदास स्वर झंकृत करता हुआ
घूमता है पवन,
आँखों में जम जाते हैं आँसू
मालूम नहीं किसलिए ?
और मन की निःश्वासों को
नहीं मिलती कोई राह
कहीं भी।

बा० भ० बोरकर

ज्यों-ज्यों समझ आती है

ज्यों-ज्यों समझ आती है,
त्यों-त्यों निकटतम व्यक्ति भी होते हैं दूर,
पुराने शब्द, रीते हो कर, बेसुरे बजते हैं
ज्यों-ज्यों अनुभूति होती है,
त्यों-त्यों धूप पानी में घुल जाती है,
तिरछी छायाओं में, राह भूल कर, चाँदनी मुरझा जाती है।
जैसे-जैसे समझदारी आती है,
वैसे-वैसे सभी मूर्तियाँ होती हैं जीर्ण
पलकों का स्नेह जम जाता है और ज्योति बुझती है।
अनुभव के साथ-साथ,
कैसे वृक्ष; पंछी से नेह लगाते हैं
शब्द सभी मिट जाते और तालाब में ही झूमने लगते हैं।
परिचय होते-होते,
कैसे दूर की घण्टियाँ सुन पड़ती हैं,
दूर के रंग, सुदूर की गन्ध कैसे प्राणों को खींचती है।
बोध होते-होते,
कैसा एकाकीपन भर जाता प्राणों में
राग-द्वेष उड़ जाते और स्वतः को खुद पर ही तरस आता है।

पीपल पर बैठा हुआ,
बोलता है काग 'यह अनुभूति भी एक भ्रम है'
जब तक उत्तर खोजूँ,
तब तक, वह धूर्त उड़ जाता है।

बारह मास एक ही क्षण में

चित्रों को पुष्पित करता हुआ चैत्र
तुम्हारे देह की मादकता बनता है,
और वैशाख वक्षस्थल में फलित हो कर
नयी गन्ध फैलाता है।
जेठ ने तुम्हारे अंगों में
कोमल जुही की मृदुता भर दी,
और आषाढ़ ने
आँखों में भर दी गोली काजल की रातें।
सावन ने तेरे मुखड़े पर
धूप और बरखा की जाली उढ़ा दी,
और भादों ने रोम-रोम में भर दिया
नये अंकुरों का उन्मेष।
तेरे शब्दों में आश्विन के नभ का
चमत्कार समाया है,
और हाव-भावों में
कार्तिक करता है शृंगार।
तेरी गति की भव्यता में
मार्गशीर्ष का बड़प्पन है,

और मोहक लावण्य में
पौष की चाँदनी की शान्त स्निग्धता ।
तेरे स्पर्श में
माघ के हृदय का आकर्षण,
और तेरी ख़ुशियों में
फागुन बिखेरता है सन्ध्या के रंग ।
तेरे कारण एक ही क्षण में
बारह मासों का आलिंगन सम्भव बनता है,
और सम्पूर्ण सृष्टि का सौन्दर्य
पीता हूँ
अधरों के यौवन में ।

प्रार्थना

प्रार्थना तो वही
जो कविता की तरह
अचल हो कर भी स्पन्दनशील है
शब्दों के स्थिर शिल्प में भी जो बँधती नहीं,
और ऊगती रहती है वृक्ष के समान ।
प्राणों के बीज फूटते हैं,
और वह चढ़ती रहती है ऊपर को
हरे रंग की अग्नि-शिखा बनके
खोजती रहती है सतत असीम का ऊर्ध्वशिखर,
प्राणों में उसके पल्लवित होते ही
मानव स्वयं बन जाता है अवधूत अश्वत्थ;
उसके पैरों में उग आती हैं जड़ें
और सोखने लगती हैं
इतने दिनों की जमी हुई मौन अन्धी परतें रसातल की;
जिसके दाहक रस के कारण
उसके पत्ते झरने लगते हैं,
मौन का मन्त्र जपते हुए
निष्फलता की उपासना में

वह आपाद-मस्तक पूर्ण सफल होता है;
और उसके अंगों से बहते हैं
प्रकाश के निर्झर।
ऐसे शिशिर में स्नान करने के बाद ही
बसन्त का स्पर्श मिल पाता है;
तब प्रार्थना ही
प्रसाद बनके
ज्योति के समान जलने लगती है,
लेकिन उस ज्योति में
काजल नहीं होता
उसकी छाया नहीं होती।

मंगेश पाडगाँवकर

आधुनिक मराठी कविताके दूसरे शीर्षस्थ कवि ।

पाडगाँवकरका साहित्य प्रकृतिके माध्यमसे, सौन्दर्यके स्तरपर, आनन्दकी विराट् साधना है । उनपर कभी-कभी रवीन्द्रनाथका प्रभाव दिखाई देता है । उनकी शैली तथा बिम्बविधानका अनुकरण मराठीमें खूब हो रहा है । पाडगाँवकरने मराठी कविताको नयी अर्थवत्ता, नया सौन्दर्य तथा नयी सांकेतिकता प्रदान की है, उनका कथन है – "उनकी रचनाओंमें प्रकृतिके जो सन्दर्भ आये हैं, वे उनकी सृजन प्रक्रिया (क्रियेटिव प्रोसेस) के अनिवार्य तत्त्व होकर ही आये हैं, मात्र प्रकृति-वर्णन-जैसे नहीं ।

उनके मनमें बैठा हुआ 'जिप्सी' नित नयी दिशाओंमें भटकता है, कुछ खोजनेके लिए, लेकिन उसे अपनी किसी उपलब्धिसे कभी सन्तोष नहीं होता ।

रूप, रंग, गन्ध तथा स्पर्श प्रतिमाओंका प्रयोग पाडगाँवकरने विलक्षण सफलतासे किया है । सृष्टिकी चैतन्य शक्तिके प्रति उनकी गहरी आस्था है ।

इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यंग्य भी उन्होंने लिखे और इधर चार-चार पंक्तियोंकी हास्य-व्यंग्य-प्रधान रचनाएँ लिखी हैं जिन्हें हम चाहें तो 'तुक्तक' कहें अथवा चोखे चौपदे ।

रचनाएँ : कविता – छोरी, जिप्सी, धारानृत्य ।

० ० ०

छुट्टी

सात दिनों की छुट्टी, आँखों से ही हँसनेवाली
खुले गले से, मन-ही-मन गुनगुनानेवाली,
उड़ते हुए बालों-जैसी हवा
हवा में थोड़ी ठण्डक,
चावल-जैसी रेत में फँसी पड़ी है एक निष्काम नौका।
समुद्री पक्षियों के पैरों की ब्राह्मी लिपि
उभरी है गीली रेत पर,
चट्टान रूपी कौए की पीठ पर अटका है
सफ़ेद झागवाला फूल,
गीले पौधों के कोमल झुण्ड पर
शेर की तरह झपटने वाली लहरें
जिन्हें पीछे खींचती हैं
बचपन की लाज-भरी पगडण्डियाँ।
जल की पंक्ति सुबह-जैसे मन वाला आकाश,
दूर कहीं क्षितिज में डूबा है
खुद में खोया हुआ बादबान
मेरे नग्न, सुनहले एकान्त में रुनझुन करने वाले विहग
पैरों में धूप के घुँघरू पहन

मुझे ले चले हृदय के मायके ।
तुतलाकर झाग में नहाता हुआ तट
और सात दिनों की छुट्टी में
बालों की तरह उड़ने वाला मैं ।

दुम

बन्दर के होती है दुम
गधे के होती है दुम
खूँख़ार शेर के होती है दुम
और उसके पेट में जाने वाली
बकरी के भी होती है दुम
फिर आदमी ने ही क्यों त्याग दी दुम
और धारण कर ली चोटी निरर्थक!
दुम की सुविधा होनी ही चाहिए
तुम्हें और उन्हें होना चाहिए।
दुम हिलायी जा सकती है शान से
अपने या दूसरे के पैरों में
फँसायी जा सकती है आराम से
और ख़ास बात यह कि दुम
सिर पर धारण की जा सकती है अभिमान से।
मैंने एक दिन देखा—एक श्रेष्ठ पुरुष
मीठे स्वर में, अपने बॉस से
'यस सर' कहता हुआ,
उस समय उसका व्यक्तित्व ही

बन गया था दुम का पर्याय।
असली दुम न रहने से
कितनी तकलीफ़ें हैं।
दुम होनी चाहिए छोटी-बड़ी
दुम होनी चाहिए असली-नक़ली
उन्हें रँगने की होनी चाहिए आजादी
कभी लाल, कभी पीली
कभी सफ़ेद, कभी भगवा
कभी बिलकुल नंगी, बेरंग
जैसी हो ज़रूरत
वैसी बना लेनी चाहिए
दुम की रंगत।
मुझे लगता है कि
सिर्फ़ मूर्खों के ही नहीं होती दुम
सफल अक़्लमन्दों के होती है दुम
(एक नहीं, अनेक)
लेकिन वे उन्हें छिपाते हैं।
हर एक सफल सयाना
विशिष्ट स्थानों पर ही
अपनी दुम उठाता है
लपेटता या फटकारता है।
कई बार दूसरे लोग
उनके दुम-मूल नहीं देख पाते हैं

या अगर दिख पड़ने की सम्भावना हो
तो (शिष्टतावश) अपनी आँखें
मूँद लेते हैं ।
मगर, मैंने एक बार, मूर्खों की तरह
आँखें खोल कर
अध्यात्म का उपदेश देने वाले
एक महापुरुष को ग़ौर से देख लिया ।
ईश्वर की सौगन्ध
वहाँ भी एक दुम थी ।
और वह, वैसे ही एक
दुमदार सत्ताधारी मन्त्री के आगे
हिल रही थी ।
हम साधारण लघुमानव
हमें नहीं देखना चाहिए इस तरह
श्रेष्ठ पुरुषों की दुम ।
फिर भी मैंने वह देख ली,
मेरी नासमझ खुली आँखों में
भर आये आँसू
उस समय मेरे हाथ पक्के बँधे हुए थे
इसलिए मैंने मन-ही-मन सोचा
अगर दुम होती आदमी के पास
तो वह अपने आँसू
अपनी ही दुम से पोंछ लेता तत्काल ।



ये उदासी-भरी शाम

ये उदासी-भरी शाम ।
जैसे सुदूर वन-प्रदेश
बैठा हो उदासी ओढ़ कर;
हो कर भी मानो नहीं हैं पत्ते
और जम गये हैं गीत उनके मन के,
फीका सफ़ेद चाँद का टुकड़ा
दिल में आसमान सहेजे बैठा है;
ये उदासी-भरी शाम ।

धीमे सरक रहा है एक बादल
पता नहीं जाता है किस तलाश में ?
भव्य पर्वत विशाल
ध्यान करता है अँधेरे का,
ये उदासी-भरी शाम ।

मन में अकारण ही जल भर आया
कैसी व्याकुलता, कैसी विह्वलता,
सनसनाता हुआ पीपल

याद करता है बीते हुए दिन
ये उदासी-भरी शाम ।

हवा का ये शर्मीला झोंका
उम्र से पहले ही प्रौढ़ बन गया,
उसे ख़बर भी न हुई
कि कब उसके होठों को
शरारत-भरी मुसकानें झर गयीं ?
ये उदासी-भरी शाम ।

अँधेरे की काली हलचलें
पानी में काजल घोलती-सी
डरावनी परछाइयों में
भयानक भूत-प्रेत जागते हैं शायद;
ये उदासी-भरी शाम ।

बचे-खुचे हैं प्रकाश के कण
और ढलते अन्धकार में
दिख पड़ती हैं दूर कहीं
लाल, केसरी ज्वालाएँ
ये उदासी-भरी शाम ।

दुनिया चली गयी आगे

उस युग में
घर-घर में गूँजते थे
तुकाराम के अभंग
सोये हृदयों में जागे थे पाण्डुरंग;
ज्ञानेश्वर के छन्द
अमृत को करें पराजित;
उर में उगाते थे
अमृत रस के नव अंकुर
अब सब-कुछ बदल गया:
भाई रे, दुनिया चली गयी आगे—

भूलो वह गान पुरातन
राधा-कृष्ण माता-पिता;
अब तो हर होठ पर
लारे-लप्पा लारे-लप्पा।
बहुत पुरानी है ये कहानी
देख कर क्रौंच-वध
बाल्मीकि की करुणा में

उग आये छन्द अनुष्टुप के;
आखिर किसलिए पुरानी बातें
यार मेरे भूलो सब काव्य;
अब तो जासूसी कथाओं का
बढ़ता बाज़ार-भाव
अब सब-कुछ बदल गया
भाई रे, दुनिया चली गयी आगे—

अब ऐसा कुछ लिखो रहस्यमय
छह पन्नों में हो जायें खून सात।
उस प्रतिभा की स्तुति
जिसके छूते ही
जड़ पत्थर में
साकार हुआ उर का स्पन्दन;
सात रंग का जादू
वहाँ अजन्ता के पाषाणों में,
मठ में वेरूल के
सौन्दर्य खड़ा है मूर्तिमान,
अब सब-कुछ बदल गया
भाई रे, दुनिया चली गयी आगे—

नहीं चाहिए वेरूल या कि अजन्ता
मूर्ति तोड़ दो या फोड़ दो

अभिनेत्री की मोटर के आगे
जुड़ता समूह अब लाखों का ।
कल पढ़ा कहीं
कोई निकला पदयात्रा पर
भूमिदान लेने को
कहता है वह
आत्मा की ताक़त से
लाऊँगा शान्ति जगत् में
कहता है
प्रेम के गर्भ में ही छिपी है सब क्रान्ति,
अब सब-कुछ बदल गया
भाई रे, दुनिया चली गयी आगे—

बेकार भला क्यों
लगे गर्द इन पैरों में ?
चलो लगायें टिकिट-घरों के सम्मुख क्यू
अब संस्कृति याने रेशम का बुशकोट
जिस पर अंकित हों हाथी घोड़े ऊँट ।
अब संस्कृति याने
लाल रँगे वे होठ
अब संस्कृति याने
केवल प्रचार औ' विज्ञापन;
अब सब-कुछ बदल गया

भाई रे, दुनिया चली गयी आगे—
भव सागर से पार उतरने
मन्त्र एक जप भाई
लारे-लप्पा लारे-लप्पा ।

मंगेश पाडगाँवकर : एक दृष्टिकोण

उघड़े बदन जब पढ़ते रहते हैं बाबूजी
तब डाढ़ी लगाये हुए
भूरे कुम्हड़ेकी तरह दिखते हैं
पढ़ते-पढ़ते हो जाते हैं ध्यानमग्न
किताब रह जाती हाथ में
औंर आध घण्टे में ही घुर्राने लगते हैं।
जब पहन लेते हैं गमबूट बरसात में,
तब वे कहानी के
राक्षस-से लगते हैं
ऑफ़िस को जाने में
खुद ही करते देरी,
और फिर बिना वजह
सब पर चिल्लाते हैं।
वैसे बहादुर हैं पिताजी
डरते नहीं किसी से भी
पर जब नाराज़ रहती है माँ
तब बन जाते भीगी बिल्ली
रसोई में माँ रहती है चुप

और पिता डरते-डरते बतियाते हैं;
हम अगर जायें वहाँ
बाहर भगा देते हैं।
कभी-कभी पिताजी
रहते हैं मूड में
'व्यायाम करना ही चाहिए'
सुना कर कहते हैं, चलो घूमने—
टैक्सी में जाते हैं
टैक्सी से लौटते हैं,
और हमारे बहाने से
खाते हैं नमकीन चने और मटर के दाने।
जब सुनता हूँ उनके मुख से
कि कल तुम्हें पढ़ाऊँगा,
मेरा मन भय से
काँप-काँप जाता है,
पढ़ाते कुछ भी नहीं
डाँटते-डपटते फ़िज़ूल ही;
काम आर घण्टे के सवालों में
देखते हैं जवाब पहले से छिप कर ही।
कभी-कभी माँ से होती है
ज़ोरों की तकरार,
ग़ुस्से में, जाकर सो जाते हैं
दूसरे कमरे में,

मंगेश पाडगाँवकर

मैं कहता हूँ अच्छी सज़ा मिली
अब बोलेगी नहीं माँ
खाना पड़ेगा होटल में,
कल से परसेगी नहीं माँ,
सुबह देखता हूँ :
कि पिताजी तो हैं माँ के पास
मज़े से गहरी नींद में पड़े
धुर्राटे भरते हैं।

मधुकर केचे

(जन्म : १९३२)

मराठी नयी कविताके बिलकुल नये कवि, जिन्होंने नयी कविताके कोलाहल और पश्चिमी वादोंकी भीड़में आस्थाका नया स्वर प्रस्तुत किया। सन्त तुकाराम कविके प्रेरणा केन्द्र हैं। केचेने मराठीकी विशिष्ट सन्त-परम्पराके आधारपर अभंग छन्द लिखकर, साहित्य-प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित किया। इन अभंगोंमें नयी उपमाओंके माध्यमसे बड़ी उदात्त अनुभूतियोंको वाणी मिली है। प्रसाद गुण केचेकी रचनाओंकी विशेषता है। भक्तिकी नम्रता और पवित्रता सर्वत्र मिलती है। भारतीय संस्कारोंके प्रति भी कविके मनमें बड़ी ममता है।

केचे हिन्दी और मराठी सन्त-साहित्यके अध्येता और अनुवादक हैं। उन्होंने रवीन्द्रनाथकी कुछ कविताओंका अनुवाद मराठीमें किया है।

रचनाएँ : कविता--दिंडी गेली पुढे, पुनवेचा थेंब। **समीक्षा**—विष्णु कृष्ण चिपळूणकर : सम्यक्दर्शन।

० ० ०

निर्गुण का पथिक मैं

निर्गुण का पथिक मैं
आया द्वार तेरे
करता हूँ पुकार ; दे मुझे ठौर ।

सिर पर बोझा लादे
थका हुआ मैं
मेरे पैर दबा दो ; ओ रे कृष्ण ।

जब तक मिटेगी थकान
तब तक रुकूँगा मैं
और स्मरण करूँगा ; तेरे उपकार ।

तेरा यह घर
नहीं है नित्य का गन्तव्य
मेरा परमधाम ; तुझसे भी आगे ।

तन में आयेगी जब
फिर नयी शक्ति
आगे की यात्रा; करूँगा मैं ।



भस्मासुर

मैंने वज्र के हाथों से
सारी शक्तियों को मोड़ा
और विज्ञान की सार में
ढोरों-जैसा बाँध दिया।

हो गया शिव से भी बड़ा;
जागा चेतना में अहंकार
फैली तीनों ही लोकों में
मेरे यश की ख्याति।

नाचता हूँ तेरे सरीखा मैं
अब हो कर बेहोश
ऐसे भस्मासुर को देख कर
तू हँस रहा मन-ही-मन।

ठोकर

जो-जो ठोकर लगी
वही-वही मेरा ज्ञान
लोग जिसके बिना; रहते हैं मज़े से।

मृत्यु का क्षण आते तक
रहूँगा जीवित
मेरा यह स्वप्न भी बिखरता है।

अँधेरे का सुख
नहीं दिया नियति ने
और प्रकाश का लाभ भी; बना मृगतृष्णा।

आया हूँ माटी से
मिट्टी में मिल जाऊँगा
विश्वके मन में; मन अपना मिला के।

जिसका है यह सब
उसको दे कर वापस
हो जाऊँ शून्यवत्; यही एक आस।

होता नहीं वह भी
सब-कुछ अधूरा
मन में यह बेचैनी; अनिश्चित ।

न जानूँ कि यह कला
पुण्य है या पाप
अधूरा पड़ता है—मापदण्ड जीवन का ।

इसीलिए लगातार
सूखे हुए पत्ते-सा
इधर-उधर सन-सन घूमता हूँ ।

तुम्हारे गर्भ में

रोम-रोम में पक आया
नये जीवन का बोध
तुम्हारे वृन्त पर
मेरे उगने के चिह्न ये।

आकाश उतर आये तेरे गर्भ में
अपने आलिंगन का साक्षी बन कर
जैसे नाचता है सागर का सुख
चन्द्रमा को
स्तन-पान कराने के बाद।

तन पर फूट पड़ने को
व्याकुल है कली-कली
ओ री, गन्ध बावरी
कुछ दिन तो धीरज धर।

मीरा

सन्ध्या मीरा मादक नयनोंवाली
बाट जोहती आकुल अन्तर
कि आयेगा अब कृष्ण कन्हैया
वन-प्रान्तर से सरिता-तीरे।
और उड़ी जब धूल वहाँ
सुन पड़तीं धेनुएँ रँभाती;
बंसी की तानों को सुन के
कृतार्थ हो गया गगन समूचा।
बैशाख की सिकता-जैसी
प्यासी-प्यासी वे गायें सब ;
जीभ-जीभ से पीने दौड़ीं
पानी की नयी तरंगें।
सन्ध्या मीरा सुध-बुध खो के
अंग-केशर को गीली करती
दौड़ मिली उस गऊ समूह में
व्याकुल नयनों के शर छोड़े।
दिखा नहीं उसका साँवरिया
मीरा अन्तर की पीर छिपाती

मेघों के पाषाणों में
तब फूटे रक्तिम ज्योति निर्झर।
मीरा लौट पड़ी जमुना पर
रीती उसकी प्रेम गगरिया
तभी मींचता उसकी आँखें
आया शरारती शोख़ सँवरिया।

बाल सीताराम मर्ढेकर

(जन्म १९०९, निधन १९५६)

मराठी नयी कविता (नवकाव्य) के प्रवर्तक। द्वितीय महायुद्धके उपरान्त, प्रेम कवितासे नयी कविताकी ओर आकस्मिक परिवर्तन शायद परिवेशके दबावसे भी।

मर्ढेकरका रचना-काल सन् १९४० के बादसे माना जाता है। नये बिम्ब, वैयक्तिक नियतिकी असहायता, यान्त्रिक जीवनकी विफलताका भयानक वातावरण इनकी रचनाओंमें मिलता है। आक्रोश एवं व्यंग्यके साथ-साथ, फक्कड़ाना विश्वास भी मिलता है।

"नयी प्रतिमाओंका आविष्कार अर्थात् नयी भावात्मक संयोजना (इमोशनल इक्वीबैलेन्स) का प्रयास ही नयी कविताका मुख्य लक्षण है," ऐसी उनकी प्रमुख मान्यता है। मर्ढेकर अपनी कविताओं तथा समीक्षात्मक लेखोंके कारण विवादास्पद रहे। भाषापर असाधारण अधिकार था। भाषा और अनुभूतिमें एकात्मता और अपने अनुभवोंके प्रति ईमानदारी उल्लेखनीय है।

मर्ढेकर मराठीके अतिरिक्त अँगरेज़ीके भी अच्छे लेखक थे और उनकी अँगरेज़ी रचनाओंके विषयमें टी० एस० ईलियट तथा हरबर्ट रीडने भी प्रशंसात्मक उद्गार व्यक्त किये हैं। मर्ढेकर एक मौलिक प्रतिभा थे। कविताके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास भी लिखे। समीक्षात्मक ग्रन्थोंमें उनका लिखा हुआ 'सौन्दर्य और साहित्य' (साहित्य अकादेमी-द्वारा मरणोपरान्त पुरस्कृत) अत्यन्त मौलिक तथा गहरा विवेचन प्रस्तुत करता है। नाटक तथा संगीत-रूपक भी उन्होंने लिखे थे।

रचनाएँ : कविता—शिशिरागम, काही कविता, आणखी काही कविता, मर्ढेकरांची कविता (मरणोपरान्त)। समीक्षा सौन्दर्य और साहित्य। उपन्यास—रात्रीचा दिवस, तांबडी माती, पाणी।

१

सुबह-सुबह उठ के, पीना चाय औ' कॉफ़ी;
और तुरन्त पकड़ना विद्युत् की ट्रेन।
दाँतों में तिनका धारे, कहना झुक कर 'हुज़ूर'
फिर दोपहर का खाना, बस यही सार्थकता।
शाम होने पर, भले लगी हो ज़ोरों की भूख,
फिर भी बाल-बच्चों पर, होना नहीं नाराज़।
नींद की खोपड़ी में, चिन्ताओं के बिल,
सब मिट्टी हो गया, होना ही था।
किसी के पैरों का कुछ भी होवे प्रभाव,
अपने राम बैठे-बैठे, फूँकते हैं बीड़ी।
जहाँ धुआँ उठता है, वहाँ आग जलती है,
हम हैं जमदग्नि, प्रेत के रूप-सदृश्य।

२

जो अज्ञान में जनमे, और अज्ञान में ही मरे,
उनको हे भगवान्, क्या कलेजे से लगाया तू ने ?
क्यों हुए निष्ठुर इतने, कि उनको भी छोड़ दिया
जन्म और मृत्यु के बाद भी, विश्वगर्भ में डाला।
इस धरती पर जनमे और देह हुई सफल उनकी
आये और कर्म किये और फिर चले गये।
आँसुओं के बिना गलती है चरबी उसीमें दिखती है अज्ञान
को छवि,
तेरे खेत में खाद और बीज वे बन गये।
हम ज्ञानी थक गये, पश्चात्ताप से हुए नहीं दग्ध,
और ५ भी न पसीजे, देख कर दुख औरों का !
बीने ज्ञान के कण हमने, रेत के कणों की तरह,
और अब बने कोरे पत्थर, बुद्धि के रूप में।
हमारी संवेदना हो गयी थोथी, रूखी देह के परे
ऊपर अहम् का पहाड़, शुरू हुआ।
तपती है यह धरती, मगर आँसू या पसीने का नाम नहीं
बाँझ उदर के लिए इनाम : रूखी काया।

३

गोले पीपे में मरे हुए चूहे :
गरदनें पड़ी हुईं, बिना किसी मोड़ के
होठों से मिले हुए होठ
सिर ढले हैं : आसक्ति के बिना ।
ग़रीब बेचारे, बिलों में जिये
और मरे पीपे में, हिचकी ले कर
भूरी आँखों से देखा दिन,
गात्र लिंग धो कर, दिन बीते ।
ज़िन्दा रहने पर बन्दिश है,
मरने पर भी बन्दिश है,
उदासी की ज़हरी आँखें हैं
वे भी काँच की,
शहद का छत्ता
होठों पर जो जमा हुआ
वह भी 'बैक्लाइट' का, 'बैक्लाइट' का
होठों पर जुड़े हुए होठ
पीपे में चूहों ने स्नान किया
स्नान किया ।

बाल सीताराम मर्ढेकर

४

खोजा नहीं कोई गाँव,
पूछा नहीं नाम-धाम ।
सिर्फ़ चलती हुई लोक पर
ख़ुद को चढ़ाया नीलाम ।
मन के कितने पाप
रास्ते पर करता गया
और हे प्रभु, तुम्हें देता रहा
जी-भर के गालियाँ ।
बरसातें आयीं और चली गयीं
दो-दो युद्ध जमा हुए ।
रास्ते के खम्भों की बिजली
कितनी बार आयी गयी ।
मन के इस पातक के
बनेंगे क्रिस्टल
और अब भी जिह्वा पर
चुनिन्दा गाली बची है
यही दान देना हे प्रभु,
कभी न गले मेरी यह जिह्वा ।



५

गो कि बत्तियों से पंक्चर हो गयी है रात
फिर भी कोई अँधेरे में करता है पम्प ।
हँसने का पागलपन सवार है
फिर भी रह-रह के भौंकते हैं आँसू ।
फट्ट से रबर-जैसी रात ये बैठ गयी
और इस वक़्त,
दूसरा टायर भी नहीं है पास ।
मन पर जमी हुई पपड़ियों की राशियों को
कुत्ते चाटते हैं ।
जिससे बन पड़े, वह अपने-अपने
कन्धों पर ढो ले रात,
पलकों को आँखों पर ओढ़े,
वह भी हँसते मुँह से
रबर की पंक्चर हुई रात में
भौंकते हैं रबर के ही श्वान ।



चा० रा० कान्त

(जन्म १९१३)

कान्तकी रचनाकी मुख्य विशेषता है उसकी सहजता। चाहे वे प्रेमके हों चाहे मानवतावादी रचनाएँ; दोनोंमें उनका ज़ोर प्रगतिपर ही अधिक है इसीलिए वे अफ़्रीकाके जन-जागरणसे भी अपना तादात्म्य स्थापित कर सके हैं। सम्प्रति वे बम्बई रेडियोपर निर्देशक हैं।

रचनाएँ : काव्य-पहाटतारा, रुद्रवीणा, वलांटी।

० ० ०

चिनगारी फूटी है

मिट्टी के मन में चिनगारी फूटी है
आज अँधेरे के महाद्वीप में
एक ज्योति चमकी है
उस मशाल में
सर्पमणियों की रक्तिम आभा
फूतकार कर रही है;
सिंह की आँखों में झलकने वाली
मृत्यु के बिन्दु चमकते हैं;
लेकिन ओ हवा थोड़ा ठहर जा
इस तरह अन्धा बन के मत भाग।
शायद इस ज्योति से जल उठें अनेक दीप
साँभर के सींगों में भड़क उठें लपटें।
ठहर जा हवा
मिट्टी के मन में चिनगारी फूटी है।
ज्वालामुखी की क्रोड़ में
सूर्य के वीर्य से जन्मा है यह देश
अँधेरे जंगलों में, सदियों के कुहरे में
झुक कर कौन पढ़ता है वहाँ

रहस्य-भरे भयावने पिरामिडों की
तिरछी–पाषाणी बारहखड़ी ?
स्फिक्स की पलकहीन आँखों में
कौन खोज रहा है अर्थ
घुटी हुई साँसों और बहते हुए ख़ून का ?
जंज़ीरों से घसीटे गये
ग़ुलामों के, रेत पर उभरे हुए पग-चिह्न
प्रतिशोध की लय से मचल उठे हैं
शायद
मिट्टी के मन में चिनगारी फूटी है।
बाँझ मरुस्थल की रेत
गर्भवती हुई है
घनघोर जंगल में लगी हुई
आग के चारों ओर
मस्ती में नाच रहे हैं
अर्धनग्न काले अंग
जवानी के काले संगमरमरी टुकड़े
वर्षा की रात्रि में
आषाढ़ी मेघों के काजल स्वप्न
घास के लहरदार घाँघरे
घूम रहे हैं गोल-गोल।
क्षितिज की ढोलक ठनक रही है
उनकी शंख-ध्वनियों में

सागर की गर्जन है
खेतों में बिखरा है
सूर्य का तेजस्वी प्रकाश
और उस अग्नि में उग आयी है
एक मानवीय आँख
काली-सफ़ेद खोपड़ी की तरह
पानी से भरी हुई
मिट्टी के मन में चिनगारी फूटी है।
मुहम्मद साहब का ऊँट
तलवारों के पत्ते चबाता हुआ इधर आया था
मगर प्यासा ही लौट गया।
उसकी पीठ पर से उड़े हुए
क़ुरान के फटे पन्ने
सागा के जंगल ने खा डाले।
क्राइस्ट का मेमना भी इधर आया
चरता हुआ
मगर तराज़ू और तलवार के झगड़ों में
अपना क्रूस छोड़ कर चला गया।
गंगा के हाथ
और हिमालय की छाया ले कर
एक हड्डियों का ढाँचा भी इधर आया
और इस मिट्टी में
पहली ज्योति उसी ने जलायी

सत्य की शान्त ज्योति सत्याग्रही ।
(गरम रेत की ज्वालाएँ
हिमालय के मन में झलक उठीं)
गंगा-जमना के तीर पर
दक्षिण महासागर के तट पर
वही प्रकाश फैला है ।
मिट्टी के मन में चिनगारी फूटी है
सात समुन्दर पार
दर्पणी इस्पाती शब्दों के
गगनभेदी महलों में
वाद-विवादों के पटाखे छोड़नेवाले
आतिशबाज़ खिलाड़ियो,
इस मिट्टी की तरफ़ देखो—
वाशिंगटन में बाहर खींची गयी
आज़ादी की तलवार का पानी
यहीं चढ़ेगा कसौटी पर ।
लिंकन-द्वारा ली गयी समता की शपथ
कांगो के तीर पर होगी सार्थक ।
महात्माजी की घायल सान्ध्य प्रार्थना
प्राणों से भी विराट् हो कर
इसी मिट्टी में से
सूर्य-मण्डल का भेदन करेगी
मिट्टी के मन में चिनगारी फूटी है ।

बाँग

एक ताल पर एक ही लय में
हज़ारों पैरों की आहट सुन पड़ती है
सैकड़ों ध्वज हवा में फहराते हैं
दिशाओं में गूँजते हैं कोटि-कोटि स्वर ।
मैं कहता हूँ—
यह नये जगत् का आह्वान है
युगान्तर की प्रभात-फेरी जा रही है,
देखो—यह देखो नूतन पर्व का पुण्य प्रभात
नये युग का नूतन प्रकाश,
जय-जयकार करो नव युग का ।
मेरी यह घोषणा सुन कर
रास्ते की गिरती दीवारों पर की छायाएँ
पिच्च से थूकती हैं,
कहती हैं—
आज सुबह
पीछे के दड़बे में
छुरी की छाया में घूमनेवाला
कसाई का मुर्ग़ा भी

देता था ऐसी ही बाँग
दिवस के आगमन की
नयी सुबह के फूटने की
क्या तुम्हारी आँखों के सामने भी
हलाल किये हुए
मुर्ग़ के पंख उड़ने लगे हैं ?

नीद में तुम हंस पड़ी

एक रात
मेरे आलिंगन में
नींद में तुम हँस पड़ो ।
तुम्हारी सिहरन कह रही थी
कि परियों के देश में
रातरानी की लता पर खिला है एक फूल ।
बड़ी-बड़ो आँखें, मुँदी हुई थीं शान्त
चुम्बन से गीले होठ हँसते हुए
गालों पर घुँघराले बालों की लट
मेरी नि:श्वासों से हिल जाती
नींद में तुम हँस पडती ।

आँगन में उतरता था चाँद
जामुनी रात नदी में डूबी पक रही थो
यह हवा भी, आश्रय व्याकुल
पत्तों-पत्तों पर उदास बैठी थी
नींद में तुम हंस पड़ी ।

आलिंगन में घुल गयी व्यथा

शेष रही चन्द्र-अमृत की कथा
आधी रात शिथिल तन पर
सुख-दुख के फूल उगे
नींद में तुम हँस पड़ी ।

कैसी अजीब है मुसकराहट की चाँदनी राह
जहाँ रात को मिलता नहीं ओर-छोर
इसी राह पर संसृति के दुख
युग-युग से चलते हैं
नींद में तुम हँस पड़ी ।

बरसात में भीगने पर भी

बरसात में भीग कर भी
बादलों में बुझती नहीं बिजली
ऐसी ही एक ज्योति
जलती है मेरे मन में ।

नींद टूटने पर भी
टूटता नहीं मेरा सपना
और मेरी आँखों के आसपास
सुन पड़ती है उसकी आहट ।

पागल ज़िन्दगी की राह
आगे को हो चुकी है ख़त्म
फिर भी हर रोज़ नयी राहें
फूटती हैं इन पैरों में ।

नक्षत्रों के आगे भी
चलता ही जाऊँगा मैं

चन्द्रमा पर का दाग़
है मेरा ही पग-चिह्न ।

फिर भी चलता हूँ एकाकी
धूल-भरी राहों पर
पाँव थक-थक कर थमते हैं
राह चिल्ला कर मुड़ती है ।

सामने पेड़ों पर लटकता है
फीका उदास पतझर
पराग नहीं, भ्रमर नहीं
सिर्फ़ निराश आसमान ।

कहा किसी ने दूर से
'मधु क्षरन्ति सिन्धवः'
मुड़ कर ज्यों मैंने देखा
थे तेरे ही गीले नयन ।

बरसात में भीग कर भी
बादलों में बुझती नहीं बिजली
ऐसी शाश्वत ज्योति
बता किसने जलायी मेरे मन में ?



कवोन्द्र वह गीत दे

(रवीन्द्र स्मरण)

१

वह गीत दे
रवीन्द्र वह गीत दे
जिसकी लय में, जिसको गति में
धुँधले कुहरे में घूमती हुई
धरती के सुनहरे नारंगी स्थल
असीम की परिक्रमा करते रहते हैं
दे वही गीत
रवीन्द्र वह गीत दे ।

२

धरती अभो भी
उस गीत की प्रतीक्षा में है
पवन में, पुष्पों में
आकाश के रंगों में,
सागर की लहरों में
वह गोत ढूँढ़नेवालों को

तू ने ही दिया था वह गीत
ओ आनन्द यात्री;
अनुच्चरित वह शब्द
उन्हें मिला तेरे ही गीतों में।
तेरे ही पदों की स्थायी टेक में
मिला वह शाश्वत राग
शून्य के भी पार पहुँचनेवाला
निर्गुण का अनहद नाद
उस नाद शून्यता को
फिर से नाद ब्रह्म दे
रवीन्द्र वह गीत दे।

२

तेरे शब्द
चिर-यौवना उर्वशी के
लावण्य में स्नात थे
उपेक्षित उर्मिला की आँखों से
दुख का – जल ले कर आये
व्यथित देवयानी का शाप-ताप
तेरी ही वाणी पा कर शमित हुआ
संजीवनी मन्त्र बना
दुखी कुण्ठित यौवन को
समर्पण का संगीत दे

वेदना की ऋचाएँ दे
कवीन्द्र वह गीत दे।

४

आज भी वही पवन बहता है
वे ही तारे जागते हैं
फूल वही धूप वही
हँसते-मुरझाते हैं
नदियाँ आगे को बहती हैं
जल पर नौकाएँ तैरती हैं
प्रश्नाकार ?
नाविक कहाँ है
नाव को दिशा दे
नाविक को गीत दे
मुक्त नदियों को किनारे दे
किनारे को भी गीत दे
कवीन्द्र वह गीत दे।

५

मानवता के सागर तीर पर
वैसी ही जात्रा जुड़ी है
रेत कणों में बजती है बाँसुरी
मरण-द्वार पर

सुनहला पीपल झूमता है
किन्तु
हम भटक रहे हैं
स्वरों से बहरे, प्रकाश से अन्धे
अणु-विस्फोटों के धुएँ से
घुटते हुए क्षितिज में
भटक रहे हैं अश्वत्थामा सरीखे
अभिशापित जीवन ढोते हुए
मस्तक की मणि खो कर
प्रतिहिंसा से पशु बन कर
दिन और रात की राहों पर
भटकते हैं ।

६

इस सन्ध्या के परे
तू अभी भी खड़ा है
गीत गाता हुआ ।
तेरे शब्दों में
आनन्द की किरणें हैं ।
फूलों के रंग हैं गन्ध हैं
ताज़े और सशक्त
इस शताब्दी की ओस से भीगी
आँसू पी कर

घुटती हुई इन दिशाओं को
उष:काल के कुम्हलाये स्वप्न-पुष्पों को
फिर से किरन-स्पर्श दे
रवीन्द्र वह गीत दे ।

विन्दा करन्दीकर

(जन्म १९१८)

वास्तविक नाम गो० वी० करन्दीकर। मर्ढेकरके पश्चात् नयी कविताके शीर्षस्थ कवि एवं बहुचर्चित रचनाकार। मार्क्स-वादसे प्रभावित होनेके साथ-साथ,शृंगारके कुशल चितेरे।

तीव्र एवं विविध अनुभूतियाँ मिलती हैं। आप मराठीके सर्वाधिक प्रयोगशील कवि हैं। यथार्थको जाननेकी अदम्य जिज्ञासा तथा जीवनके प्रति अटूट आसक्ति – दोनोंका समन्वय मिलता है। कविताओंमें संवेदना, भावना तथा विचारोंकी एकात्मता।

विन्दा करन्दीकरने मुक्त सॉनेट तथा अभंगोंका प्रयोग एक साथ किया है और इस तरह परम्पराको आधुनिकतासे जोड़ा है। नये शब्द-प्रयोग भी किये हैं।

वे अँगरेज़ीके प्राध्यापक हैं और अच्छे समीक्षक भी। उनकी रचनाओंसे नयी कविताके प्रति हमारी आस्था दृढ़ होती है। उनके नवीनतम कविता संग्रहमें 'तालचित्र' तथा 'आततायी अभंग' शीर्षकसे नयी सम्भावनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। तालचित्र-के सम्बन्धमें कविका वक्तव्य इस प्रकार है – "संगीतके प्रत्येक तालका खास वज़न होता है और किसी विशिष्ट भाव-स्थितिको सूचित करनेकी क्षमता भी उसमें होती है, जैसे 'दीपचन्दी' तालकी बन्दिश शृंगार-सूचक है। जैसे राजपूत चित्रकलाने रागिनियोंके भावचित्र रंगोंके माध्यमसे अंकित किये, वैसे ही मैंने भी भाषाके माध्यमसे, ये ताल-चित्र प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है। कवितामें अभिव्यक्त होनेवाली अनुभूति ही उस विशिष्ट तालकी प्रतिमा (इमेज) होती है।"

रचनाएँ : कविता – मृद्गन्ध, स्वेदगंगा, ध्रुपद। समीक्षा – अरिस्टा-टलका काव्यशास्त्र। निबन्ध - स्पर्शाची पालवी। बालगीत – राणीची बाग, एकदाकायझाले। प्रायः सभी प्रकाशित कृतियाँ पुरस्कृत हैं। आजकल फाउस्ट काव्यका मराठी अनुवाद कर रहे हैं।

बहुरूपिया

सीना चाहिए
फटे हुए जीवन को
खेतों में फैली हुई अनन्त
हरी घास की नोंकदार सुइयों से
मेरी दूँकान है दरजी की ।
धोना चाहिए
सिलवट पड़े फटे वस्त्रों को
मिट्टी के ढेर और काटती हवाओं में
हँसते हुए पसीने से,
पीढ़ियों से मेरा धन्धा धोबी का ।
उधेड़ना चाहिए
बचकाने पण्डितों का क़ानूनी कसीदा
और चढ़ाना चाहिए
न मिटनेवाला नया रंग गहरा लाल,
जिसमें छिप जायें
ख़ूनी रक्त के गहरे दाग़ ।
मिट्टी के रंगोंवाला मैं हूँ रँगरेज़ ।
सुलझाना चाहिए

क्रान्ति की कंघी से
बीमार ज़िन्दगी के उलझे हुए बाल,
और सजाना चाहिए
भोली जनता की शरमीली दुल्हन को,
अनागत से गहरे प्रणय के लिए
मेरे ख़ून में का पुरोहित हटता नहीं
ब्याह रचाने का शौक़ घटता नहीं।

यन्त्रावतार

ओ यन्त्र आ
शस्य श्यामल धरती को आलिंगन में कसके
समाज-पुरुष ने किया मैथुन,
इस उत्कट सुरति के—
विज्ञानात्मक दाहक वीर्य से
जिसका पिण्ड बना है फ़ौलादी,
ऐसा अवतारी यन्त्र
आ और युगधर्म का कर संवर्धन ।
आ, गूँथ कर क्रान्ति की वेणियाँ
इतिहास के गर्भ को भेद कर
त्रिविक्रम के ओ ग्यारहवें अवतार ।
ओ यन्त्र आ
आकाश को वाणी देते हुए,
क्रोधित बुभुक्षा की शक्ति
आती है करती हुई जय-जयकार,
पेट की हड्डियाँ उभर कर
ऊँचे स्वर में उठाती ललकार,
'स्वीकारो इस यन्त्रको

सत्कारो इस यन्त्र को'
वेदोक्त पूजा करो इस यन्त्र की
यह साम्यवेद या पंचमवेद कहाये ।
अग्नि को कलिका, लाल यह ध्वजा
यन्त्र के सिर पर चढ़ाओ ।
अग्नि की कली यह
पिचके हुए पेटों की आग की ज्वाला यह,
पद-दलितों के आँखों की क्रोधित यह लाली,
यह है कुंकुम तिलक : नीति ने लगाया इसे
प्रगति के माथे पर ।
करो इस यन्त्र को स्वीकार
'करो इस यन्त्र का सत्कार'
अग्नि-कली अर्पित करो यन्त्र पर
आओ—आओ पामर : और बनो परमेश्वर ।
ब्रह्मा के चाक पर
स्वर-गंगा का पट्टा चढ़ा कर
विश्व विधाता ईश्वर ने भी
इस यन्त्र को स्वीकारा ।
आ यन्त्र आ
सृष्टि को बनाते आ,
कष्टों को सुखाते आ,
आ तू बन कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश
आ तू नयी रचना के वेदों को गुँजाते,

आ, आ, घुमाते हुए अपना चक्र सुदर्शन,
आ, आ, दिखाते हुए युगप्रवर्तक ताण्डव नृत्य ।
आ, आ, वाष्प की फूत्कारें छोड़ते
आ, आ, आँखों में बिजलियाँ घुमाते,
आ, आ, अणुयुग को ज़ंजीरें तोड़ते,
शक्ति के सम्राट् ओ
चिरशान्ति के चारण ओ,
छिपे हुए मन्त्रों को उच्चारित करते
देकर मानवता को
ज्ञान में से मुक्ति का उपहार ।
आ यन्त्र, आ यन्त्र
खड्, खड्, खड्, खट्, खट्, खट्
चीरते हुए, फाड़ते हुए
पिसी हुई हड्डियों को ।
नये बीज, नये अंकुरों का
अस्थिमज्जा से कर पोषण ।
धिक् धिक् धिक् धिक् धिक् धिक्
ऊँचे स्वर में
सड़े हुए, झरे हुए, गले हुए को धिक्कारता;
धड़-धड़-धड़-धड़-धड़-धड़
सृजनात्मक चेतना को
मन्त्रबल से उद्घोषित करता ।
आ यन्त्र, आ यन्त्र

यन्त्रों को सार्थक करते
स्वप्नों को स्वीकृत करते
उच्चारण करते, देते आकार उन्हें ।
आ यन्त्र, आ यन्त्र ।
जलाते हुए, भस्म करते हुए
भक्षण करते, रक्षण करते
आ, तोड़ते-जोड़ते,
आ, काटते-बोते,
आ, सहलाते फलित करते,
लाल नौकाएँ हाँकते
लाल-लाल नदियों पर
लाल-लाल क्षितिज पर से,
आ यन्त्र, आ यन्त्र
मन्त्रों को सार्थक करते
स्वप्नों को स्वीकृत करते
उच्चारण करते, देते आकार उन्हें ।
आ यन्त्र, आ यन्त्र
नये मानव को गढ़ता
नये मूल्य उद्‌घाटित करता
क्रान्तिपाठ उद्‌घोषित करता—
''पृथिवी क्रान्तिरन्तरिक्ष्ं क्रान्तिर्द्यौः क्रान्तिर्दिशः
क्रान्तिरवान्तरदिशाः क्रान्तिरग्निः क्रान्तिर्वायुः
क्रान्तिश्चन्द्रमाः क्रान्तिर्नक्षत्राणि क्रान्तिरापः

क्रान्तिरोषधयः क्रान्तिर्वनस्पतयः क्रान्तिर्गोः
क्रान्तिरजा क्रान्तिरश्वः क्रान्तिः पुरुषः क्रान्तिर्ब्रह्म
क्रान्तिर्ब्राह्मणः क्रान्तिः क्रान्तिरेव क्रान्तिर्मे
अस्तु क्रान्तिः
ॐ क्रान्तिः क्रान्तिः क्रान्तिः"

इन शब्दों को

मिले इन शब्दों को
तेरे जुड़े में लगे हरे चम्पे की सुगन्ध,
इन पंक्तियों में बहे
तेरे भावुक रक्त को आग,
इन मादक छन्दों में हिले
तेरा शहदीला हिलता अंक
उत्सुक यमकों में उतरे
तेरे आलिंगन का गहरा नशा,
इनके अर्थों को मिले
तनाव तेरे उत्तान मन का,
इस कविता को मिले
तेरे कठोर और तराशे हुए
स्तनों को गठन,
तेरी वासना की लचक-जैसी
मेरी अनुभूति हो,
फिर इस रचना की गरदन पर
फिर आत्मा का भूत – चाहे बैठे।



दादरा

शिशिर में
अंगों को पी जानेवाली आँखों में
मस्ती का नशा उतर आता है
अनार की डाली पर का
अनोखा पंछी
उड़ते हुए
बड़ा और बड़ा होता है
जैसे गालों पर फैलनेवाली रंग-छटा;
ऐसे में तुझे
दादरे में सम्पृक्त कर
पीनेवाले मेरे होठ
छह मात्राओंके होते हैं।
लम्बी प्रतीक्षा के बिना
वह क्षण नहीं आता
फिर वासना घनीभूत होती है
तेरे अधरों का निचला हिस्सा
बेहोश रहता है,
और मेरे आकाश की सीमा में

नहीं बँधता,
और तब शिशिर
तेरे होठों की छाया में
मोर बन कर नाचने लगता है
आँखें बनती हैं मयूरपंख।
तेरा वह अन्धकार
स्तनाकार होता है
और उसमें भटकनेवाले
तीर्थंकर हाथ मेरे होते हैं;
ऐसा वह मेरा एकान्त भी
छह मात्राओं का होता है।
तब उन्मत्त वृषभ-सा
आता है वसन्त
शिशिर को खदेड़ता हुआ
पुष्प पराग से भरे रहते हैं
और हरेक पँखुड़ी
न सहे जानेवाले
क्षणों की सुगन्ध से
महकती है।
पृथ्वी को निगल जानेवाले
तेरे नितम्ब
जब हरी घास पर डोलते हैं
तब

तुम्हारे कौमार्य को
दादरा के
दर्द-भरे
आलिंगन की ज़रूरत रहती है।

वेदना को अर्थ दो

वेदना को अर्थ दो,
धीरज दो इतना
कि खींच सको तार।
ओ रुद्र काल
हाथ में लो रुद्र वीणा।

वेदना को अर्थ दो,
आँसुओं को मिले यश को दीप्ति
पूरब दिशा लगाये कुंकुम तिलक
मेरे ही रक्त का।

वेदना को अर्थ दो :
व्यर्थ हो ना यह प्रसव-पोड़ा,
फिर किसी दुख के वार हों
जन्म हो पहले ही आसक्ति का।



बसन्त बापट

यद्यपि बसन्त बापट अपनी सामाजिक चेतनाके लिए विख्यात हैं फिर भी उनकी रचनाओंमें पर्याप्त विविधता है। उनकी शैली भव्य और रचना प्रौढ़ है। चंचल अनुभूतियोंका सरस चित्रण हुआ है। वे छन्द और लयको काव्य-रचनाका आवश्यक अंग मानते हैं। उनकी दृष्टिमें कविता एक सेन्द्रिय विकास (Orgavic Grawth) है, जिसका प्रत्येक घटक मिलकर एक सम्पूर्ण चित्र बनाता है।

पाठकोंको कवितासे जो सन्तोष मिलता है उसे ही वे परम आनन्द मानते हैं। महाराष्ट्र प्रदेशके गौरवपर लिखी उनकी कविता तथा नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

रचनाएँ : कविता – बिजली, सेतु।

० ० ०

अभी भी

उस झाड़ी के पास अभी भी
हम पर हँसते फूल सदाबहार के,
अरे अभी भी अपनी स्मृतियों से
जुही झुकी जाती लज्जा के भार से ।

उसी रूप में हमें देखने
काँप रहे हैं अभी तुहिन कण,
अपनी गुप-चुप बातें सुनने
झुक आता है चम्पा का तन ।

तेरी पृष्ठ आकृति देख कर
विस्मित है हरियाली अब तक,
तेरे कोमल चरण चूमने
उत्सुक हैं पल्लव भी अब तक ।

उन बालों की उस खुशबू से
बेला अब तक महक रहा है,

अरे अभी भी नीले जल में
बिम्ब हमारा झलक रहा है ।

मेरी आशा तरलायित है
अब भी फीके चन्दा नीचे,
ज़हर घोल कर इन गीतों में
हवा बह रही आँखें मींचे ।

फूँक

कहा—बैठो, मैं बैठ गया
हँसीं तुम, मैं भी हँसा।
बस इतना ही;
लेकिन मन भटक रहा था
जाने कहाँ ?
दरवाज़े का परदा हटा कर
तुम चली गयीं जल्दी से
मेरा साथ देने को रह गयीं
सिर्फ़ निशानियाँ—तुम्हारी सुस्त
ज़िन्दगी की।

क्यों इस ज़ाली के परदे पर
हृदय की उलटी आकृति काढ़ी है तुमने ?
काँच की अलमारी में
क्यों रखे हैं फूस के तोता और मैना ?
लकड़ी के फलों पर
गटापारचे के पक्षी उड़ते हैं,
और दीवार पर
रवि वर्मा के सशक्त चित्र; मृगों के

काली मख़मल पर
पति के नाम कब सुन्दर कसीदा;
यदि चूकी हो उनमें का एक भी टाँका
तो मैं हो जाऊँ कृतार्थ।
पूछा तुमने—क्या लोगे ?
कितना सीधा सवाल यह
क्या लूँ भला ?
दोगी क्या वो सब; पहले-जैसा ?
मुझे चाहिए है
खट्टी इमली का हिसाब
वे लालची होंठ, वो गुपचुप, वो क़समें;
वो पानी, शक्कर घुली जिसमें।
तुम्हारा और पतिदेव का यह फ़ोटो
अच्छा है :
तुम्हारा सारा सौन्दर्य
इन फूले गालों पर फूट रहा है
बलिष्ठ भुजा, चौड़े स्कन्ध
आँखों में कर्तृत्व की चमक;
ख़ूब है।
मुझे आता है गुस्सा
चित्र में तुम्हें ऐसा निर्विकार देख कर
मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं था।
मैं तुम्हें सुनाने आया था

ज़हर-भरा
कम से कम एक व्यंग्य-भरा वाक्य;
पर उतना भी हो नहीं सका मुझसे।
और तुम
लगातार हँसती ही रही,
अब इतना ही बता
देहरी पर तुम्हारी आँखों में
क्यों छलके आँसू ?
सुपारी खाते ही
गले में क्या कुछ अटक गया ?
पर, रहने दो, मत बताओ ये सब
वो भी
सालेगा मुझे
मन में एक और दर्द
एक और फूँक बन कर।

अक्षय दान

तुम्हें अपने में कर लूँ सम्पृक्त
क्या इसीलिए मिली ये भुजाएँ ?
तुम्हें सम्पूर्णता में शोषित कर लूँ
क्या इसीलिए मिले हैं ये अधर ?
प्रतिक्षण तेरा ही ध्यान करूँ
क्या इसीलिए मिला है यह मन ?
तुम यह सब-कुछ समझती हो;
शायद इसीलिए
इन्हें नकारती हो ।
लगता है
कि तू पूरी तरह घुल-मिल गयी मुझमें
फिर भी कुछ दूरी रह जाती है,
तुझे सोख लेता हूँ यथाशक्ति
फिर भी अन्तर में तृष्णा बच रहती है
तुम मुझमें सम्पृक्त हो कर भी
मुझसे पृथक् क्यों हो ?
इसी अधूरेपन से ही
खिलती है

मेरे दर्द की कली ।
रीते घट में
क्यों है यह पागलपन
कि मैं समुद्र सोखूँगा ?
मन में
क्यों पलती है यह लालसा
कि मैं धरती को उर में रख लूँगा ?
मन को मिला था
जो एक ओस-कण,
क्या वह
अपर्याप्त था ?
तुमने जो दिया था
सुवर्ण का एक कण
मैं तो वही रखूँगा
सहेज कर;
तुम्हें जो-जो कुछ चाहिए हो
ले लो ।
तुम्हारे लेने पर
नहीं है बन्धन कोई,
तुमने
जो भी दिया है
मुझको वही होगा पर्याप्त
ऐसा अक्षय दान है तुम्हारा ।

■

ज़ंजीर

जहाँ जाता हूँ
वहीं ये ज़ंजीर साथ जाती हैं।
क्षितिज की परिधियों में
घूमता हूँ भ्रमित,
कैशोर बालाओं ने छेड़े हैं
पंचम के स्वर,
उनका मुक्त हास्य
संगीत की मधुर तान,
मन होता है
उन्हीं में मिल कर नाचूँ गाऊँ
लेकिन लोकापवाद का भय
रोक-रोक लेता है;
जाता हूँ जहाँ
वहीं ज़ंजीर साथ जाती है।

गीली धूप पर
बरसती है सावन की फुहार,
चमेली के कुंज में

बिछी है मोतियों की झालर,
मन होता है
जंगली फूलों की तरह
मैं भी भीगूँ नहाऊँ,
लेकिन वस्त्रों की क्रीज़ बिगड़ने का भय
रोक-रोक देता है;
जहाँ-जहाँ जाता हूँ
ज़ंजीर साथ जाती है।

कभी लगता है
हाथ में लेकर तेरा हाथ
चन्दन की चाँदनी में घूमें हम दोनों,
और समुद्र की गोद में
हौले से प्रवेश करें,
तभी स्वयं की प्रतिष्ठा का बाँध
रोक-रोक देता है
जहाँ-जहाँ जाता हूँ
ज़ंजीर साथ जाती है।

तितलियों के पीछे
भागते बनता नहीं,
उठती लहरों पर नाव छोड़ना
जमता नहीं,

जंगल के पक्षियों को
आकर्षित कैसे करूँ ?
तीस की उमर-क़ैद ने
पैरों में पहना दी बेड़ी;
जहाँ-जहाँ जाता हूँ
ज़ंजीर साथ जाती है ।

पूछो व

चढ़ाव पर झुकी डालें
मोड़ पर टूटा पुल,
वहीं चुभा काँटा
वहीं रौंदा गया फूल
पूछो उस बूढ़े वटवृक्ष से ।

थोड़े आगे, लताएँ उलझ गयीं,
थोड़े आगे, वृक्ष झुक आये,
वहीं धन्य हुई धरती
वहीं कृतार्थ हुआ नील मेघ
पूछो उस उन्मुक्त निर्झर से ।

खँडहर बना पुराना क़िला
गिरी हुई दीवारें,
वहीं उगा नन्हा पीपल
वहीं कुचले गये अनेक फूल,
पूछो उस खण्डित तट से ।

बसन्त बापट

१३

जहाँ दिशाओं के नाम मिट गये हैं
जहाँ आकाश का उज्ज्वल भाल है,
वहीं सितारा डूबा था
वहीं रक्तिम चाँद ऊगा था,
पूछो उस उदास नभ से ।

जहाँ आलिंगन में दृष्टि डूब गयी
तुम्हारा-मेरा : दोनों का अस्तित्व-बोध मिट गया;
वहीं क्षण-भर को जिये थे
वहीं मिली थी जीवन की सार्थकता;
पूछो इस निष्प्राण मन से ।

शरच्चन्द्र मुक्तिबोध

प्रसिद्ध हिन्दी कवि स्व० गजानन माधव मुक्तिबोधके अनुज। मर्ढेकरके पश्चात् '४७ से जिन कवियोंने ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया उनमें मुक्तिबोध प्रमुख हैं। मानवताके प्रति गहरी आत्मीयता, प्रखर अनुभूति एवं मौलिक अभिव्यक्ति आपकी विशेषताएँ हैं।

मार्क्सवादके क्रान्तिकारी प्रभाओंके बावजूद, कुछ रचनाएँ विशुद्ध सौन्दर्यसे ओतप्रोत हैं। प्रगतिवादी होते हुए भी शरच्चन्द्र भारतीय संस्कारों तथा परिवेशके पक्षपाती हैं। उनकी मान्यता है कि आजका मध्यमवर्गीय कवि जबतक अपने वर्गगत रूढ़ संस्कारोंको छोड़कर जन-मानसके साथ घुल-मिल नहीं जाता, तबतक उसकी रचनाओंमें कुण्ठा एवं विकृति बनी रहेगी।

रचनाएँ : कविता—नवीन मळवाट, यात्रिक।

० ० ०

दो ज्योति

दुख सबका है
आपका है, मेरा है,
लेकिन दुख की भी होती हैं
अलग-अलग जातियाँ।
किसी दुख की लौ होती है काली
और उसमें से बेचैनी की चिनगारियाँ
फूटती रहती हैं।
और सिर्फ़ कालिख ही बचती है।
किसी दुख की लौ होती है लाल
अँधेरे पर जिसका सिर उठा हुआ
दिखता है,
उसमें से चिनगारी की तरह
सितारे फूटते हैं
और वे दौड़ते हैं दूर-दूर
आँखों की पुतलियोंमें चमकते हैं,
हज़ारों सालों तक लोग उसकी चर्चा
करते हैं,
कहते हैं हाँ भाई एक थी ज्योति

हमने वह देखी थी
धरती पर ज्योति का अस्तित्व
है एक हक़ीकत'
काली ज्योति
वह तो बस अँधेरे पर
अँधेरे का शिल्प है;
हड्डी-हड्डी में वह बुख़ार की तरह
धुँधुवाती है,
हर आँख में उसका उदास उजाला
मायूसी उँडेलता है।
उसे छुओ तो हाथों में
लगती है कालिख
और तलुए भी हो जाते हैं काले,
जो अपनी कालिख-भरी छाप
धरती पर छोड़ते चलते हैं।
और इस तरह धीरे-धीरे
गरदन ही टूट जाती है।
घुटनों में भर जाता है उसका असर
जिससे शब्दों के पंख झर कर टूटते हैं,
और लाख-लाख पृष्ठों पर गिरते हैं,
लाल ज्योति :
दूर से ही दीख पड़ती है
मुसकराकर सिर उठाती है

और बादलों पर उभरते हैं नये चित्र,
आँखें भर आती हैं
और कुछ न बोल कर भी
सब-कुछ कह दिया जाता है,
हम महसूस करते हैं, समझते हैं,
अँधेरे के माथे पर
स्वर्णिम चरण- चिह्न झलकने लगते हैं।
काली ज्योति :
वो तो बस उगलती है शक का धुआँ
और हर आदमी : अँधेरे में
दूसरे से कटा हुआ
बिचारा अकेला पड़ जाता है,
चिल्लाता है दूसरों पर
'तुम शत्रु हो, मेरे शत्रु हो'
यह पुकार, छुरा बन कर
उसे ही भोंक देती है।
और वह आदमी
खुद अपने ही पैरों के पास
मुरदा हो कर गिर पड़ता है।
लाल ज्योति :
एक महान् उत्तर बनती है
पहाड़-जैसी बड़ी-बड़ी पुस्तकों के लिए
कभी न पूछे गये व्याकुल प्रश्नों के लिए

एक महान् उत्तर।
वह दिखाई देती है
तो सपनों को मिल जाते हैं पंख
और रात के पीछे दौड़नेवाले
तारों की हलचल उनमें भर जाती है।
बंजर ज़मीन पर
प्रज्ञा का ट्रैक्टर दौड़ने लगता है
चिनगारियों के बीज बोये जाते हैं;
और हमारी आँखें
सुनहली फ़सलों के सपने देखती हैं।
काली ज्योति कहती है 'ठहरो
तुम्हारे चेहरे पर काले दाग़ हैं
पहले उन्हें अपने हाथों से पोंछो'
लाल ज्योति कहती है 'चलो
आगे बढ़ो'
मैं तुम्हारी आँखों में पुतलियों की तरह खड़ी हूँ
काली ज्योति कहती है 'चूँकि मैं हूँ
इसीलिए तुम नहीं हो।
तुम मरोगे
मरण अवश्यम्भावी है
तुम्हारी हड्डियों में मृत्यु ही बसी है'
लाल ज्योति कहती है 'जियो
क्योंकि तुम्हारे मन की

अथाह नीली झील में एक दिया है
इसीलिए तुम मुझे भी देख सकते हो'
और
मैं देख रहा हूँ :
कि अँधेरे की पहाड़ी पर से
सुनहरी पगडण्डियाँ उभर रही हैं,
शब्द
गरुड़ की तरह विशाल बनते हैं,
और उनके पंखों तले
आसमान भी सिमट आया है,
चक्की की धुन पर
भक्ति और आस्था-भरे पद
अभी भी सुन पड़ते हैं;
क्योंकि मैंने भी
ऐसी ही एक ज्योति देखी है
इसीलिए
मैं इतना आश्वस्त
निर्भय और स्वच्छन्द हूँ ।

जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं

जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं :
जब अँधेरे के कमज़ोर क़दम
तेज़ी से बढ़ते आते हैं, हमारी ओर,
जब दीवार पर उपेक्षा की छायाओं के बीच;
घिनौनी खुसर-पुसर चलती है,
जिन चरणों पर टेक दिया था सिर
उन्हीं पाँवों के चट्टानी आघातों से
जब माथा लहूलुहान हो जाता है,
तब तुम्हारा मन
खण्ड-खण्ड हो कर क्यों बिखर जाता है ?
तब
शरबिद्ध घायल पंछी की तरह
क्यों तड़पता है तुम्हारा दिल ?
तब क्यों लगता है ऐसा
कि घबरा के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लायें;
तब ऐसी इच्छा क्यों होती है
कि शिकायत-भरे स्वर में
चीख़-चीख़ कर

रात को भी कर दें परेशान ?
तब क्यों, आख़िर क्योंकर,
मरने की इच्छा होती है
और जी चाहता है
कि मरते-मरते भी
दे जायें अनगिन अभिशाप ।
जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं :
जब उनके प्रकाश की किरणें
तुम्हें छोड़ कर
किसी और पर चमकने लगती हैं;
जब मन में सहेजी हुई अभिलाषाएँ
धूल में मिल कर
काली निराशा के ढेर के नीचे,
दफ़ना दो जाती हैं
जब नियति के अदृश्य आघातों से
फर-फर उड़नेवाला जहाज़
टुकड़े-टुकड़े हो कर
अँधेरे में भटकता है,
तब तुम्हारी मुट्ठियों में बन्द ध्रुवतारा
कहाँ चला जाता है ?
तब तुम्हारी आत्मा के
करुण आकाश का रंगीन पट
चिथड़े-चिथड़े क्यों हो जाता है ?

और क्यों शेष बचता है
अन्धी पुतलियों को हिलाने वाला
आदि-अन्तहीन, मात्र एक शून्य ।
जिसका तुमने उड़ाया था मज़ाक़,
बच्चों की तरह अँगूठा दिखाके,
किया था भयभीत,
उसकी निःशब्द
और ठण्डी साँसों से ही
तू इस क़दर घबरा क्यों गया ?
और तुरन्त अर्पित कर दिया
अपना सर्वस्व उन चरणों पर
(तेरी उस कथा में तो
तेरी आत्मा के स्वर संचित थे)

जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं :
जब अचूक विश्वासों के फ़ार्मूले
ग़लत हो जाते हैं;
अनजाने रखी हुई कुरसियाँ
और बेंचें चाहे ग़लत न हों
मगर झूठे पड़ जाते हैं
प्रेम के समीकरण;
जब एकाएक दिल का पड़ोस छोड़ कर
कोई दूर चला जाता है

जब दरवाज़े पर
आ खड़ा होता है सिपाही
अज्ञात अपराधों का वारण्ट ले कर;
जब अन्तरतम के मसीहा को
दिन-दहाड़े रास्ते पर से,
घसीटते ले जाते हैं,
क्रूस पर चढ़ा कर
और ऊँचे उठे हुए हाथों में
जब सचमुच ही
ठोंक दी जाती हैं क्रूर कीलें ;
जब तुम्हारे आह्वान के स्वर
क्षितिज के एक कोने पर खड़े हो कर
तुम्हीं को पागल क़रार देते हैं ;
तब क्यों
किसी दुष्ट की लात खा कर
कूँ-कूँ चिल्लाता हुआ
भागता जाता है
कहीं दूर, अहंकारी श्वान एक ?

जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं :
जब घुर्राटे भरनेवाले अँधेरे की
पीठ दिखाई देती है
दिखता नहीं पेट मगर ;

जब छाती पर टिके हुए खंजर को
धार दिखाई देती है,
दिखते नहीं हाथ मगर ;
और पास खड़ा हुआ शैतान हँसता है,
इनसान नहीं दिखता मगर ;
तब
तुम्हारी आस्था का ताबूत
बिना जले ही राख हो जाता है ;
और बिखर जाता है
कल्पना के तिनकों से
बनाया हुआ मासूम महल ;
जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं :
व्यर्थ ही ढोते रहे यह काया
जाना नहीं सत्य,
व्यर्थ ही थकायी जिह्वा
भोगी नहीं पीड़ा,
प्रेम किया मगर
मन में करते रहे जोड़-तोड़,
स्नेह तो था उनके पास
तेरे पास थी महज अहं की ज्वाला ।
सत्य, सत्य, केवल सत्य
यह अमर वाणी उनकी ही,
बाक़ी लोगों के पास

सिर्फ़ बहानेबाज़ी ;
वह अघोर रौद्र सत्य
देखने का साहस जो करे
मृत्यु स्वयं देगी उसको उपहार।

जब स्नेह के दिये टिमटिमाने लगते हैं :
सिर्फ़ उन्हीं क्षणों में
'स्व' को जानना चाहिए
सिर्फ़ तभी
स्वतः की सामर्थ्य तौलना चाहिए ;
और तभी
अन्तर की आत्मीयता जगा के
वही प्राचीन,
चिरपुरातन
नित नूतन अर्थोंवाली
पुकार लगानी चाहिए ;
तभी खोजना चाहिए
पत्थरों में छिपे हुए झरने,
तभी लेना चाहिए
काँटों में छिपे फूलों की आहट,
और सिर्फ़ तभी
'आज' के अकेलेपन में भी
आनेवाले 'कल' का आनन्द भोगना चाहिए;

और उन क्षणों में ही
जीवन का पूरा मूल्य चुकाना चाहिए ;
और फिर करना चाहिए
सशक्त शब्दों की घोषणा :
जब स्नेह के दीप टिमटिमाने लगते हैं।

तुम्हें धकिया कर मैं

तुम्हें धकिया कर
ये लो मैं बढ़ गया आगे।
बात सिर्फ़ इतनी है
मैं हूँ यहाँ का, तुम हो वहाँ के।
तुम हो वहाँ के
जहाँ पाप भी
सौम्य हँसो हँसता है ;
और जहाँ चोर भी
गद्गद हो सन्त-वचन बोलता,
नभ को गुँजाता है।
तुम हो वहाँ के
जहाँ सत्य
दुम दबा कर भागता है ;
और सौन्दर्य भी कहता है
कि 'पहले दो नक़द दाम'
तुम हो वहाँ के
जहाँ ज्ञान
शासकीय घोषणाओं पर

सिर हिलाता है ;
और दम्भ
जहाँ शास्त्र खोल कर
नीति के पाठ पढ़ाता है ।
तुम हो वहाँ के
जहाँ प्रेम
छिछली चेष्टाओं में
आँखें मिचकाता है ;
और जहाँ कला
चाँदी की झनकारों पर
कमर लचकाती है ।
तुम हो वहाँ के विशिष्ट
लाडले, सुकुमार, नाज़ुक मिज़ाज
मैं हूँ यहाँ का, सब का
मेरी हँसी भी तेज़ और कड़वी है
तुम्हें आहत किया और
मेरे तेजस्वी ज़ख़्म चमक उठे
और उनकी छाया ऊँची,
बहुत-बहुत ऊँची फैल गयी ।

सच मानो या न मानो

मेरी आशा बड़ी जिन्दा दिल है
तुम सच मानो या न मानो।
मेरा दुःख बड़ा आत्मीय है
तुम विश्वास करो या न करो;
मैंने कहा न-?
कि मेरे आँसू होते हैं गरम
ख़ूब गरम
और उन्हें ये ताप
तुमने ही दिया है;
इसे तुम सच मानो या न मानो।
निराशा की कड़वी शराब पी कर
नशे में मस्त हो कर
उदास दीवारो के पास
खड़े-खड़े मैं गाता हूँ;
और अजाने ही
सुबह का गीत
फूट पड़ता है;
ये विश्वास और प्रेरणा भी

तुम्हारी ही है;
तुम सच मानो या न मानो।
मैं जो ये कहता हूँ
कि मेरा दर्द
मेरे लिए एक वरदान की तरह है;
और उसमें सपने देखनेवाली
मेरी व्यथित चेतना है;
और उन सपनों का ऐश्वर्य ऐसा है
कि मौत भी
आश्चर्य से पागल हो जाती है;
और ये सब बादशाहत तुम्हारी है
तुम सच मानो या न मानो।
मैं जानता हूँ
और ये सच है
कि सारे दिये बुझ चुके हैं
भय के आतंक से
द्वार सभी बन्द हुए,
जो इक्के-दुक्के लोग बचे हैं
उनकी ज़ुबान भी लड़खड़ाती
हकलाती है;
और दूसरे ही क्षण
ख़ौफ़नाक डर से चुप हो जाती है
चारों तरफ़ ख़ामोशी

दहशत, और सन्नाटा
ऐसी भयानक रात में;
मेरा पहाड़ी स्वर
ऊँची आवाज़ में
निर्भय हो गाता है
जागृति का मुक्त छन्द।
मौत के सामने भी
मेरा यह आत्म-विश्वास
तुम्हारा है;
यह जयघोष
तुम्हारा ही है;
तुम सच मानो या न मानो।

हम

हम सब लक्ष्य हीन, श्रद्धा विहीन, टूटे हुए,
मनचाहे सपनों को ओढ़कर फिरते हैं।
हम लक्ष्य हीन, श्रद्धा विहीन, विश्रृंखल
हम सब हैं वृत्त
अपने ही अहं को केन्द्र मान
घूम रहे गोल-गोल;
नीली बैंगनी विषैली किरणें
विकेन्द्रित करती हैं।
एक दूसरे को बेधते जो
ऐसे हम वृत्त हैं
अन्तर में ज्योति थी
किन्तु वह क्षीण-हुई;
अब तो महज़ राख है
जिस पर ख़ुद का व्यक्तित्व पसार कर
निर्वाण का अजगर
घोर निराशा की आँखें खोले,
गेंडुली मारे पड़ा है।
हम एक-दूसरे को

क्रोधित दृष्टि से देखते हैं
(स्वतः के प्रति हीन भाव से पीड़ित)
होठों पर विकृतियाँ फैलती हैं,
(जैसे सृष्टि हो अर्थहीन)
मृत्यु की काली लपटों से
हमारा चेहरा क्षण-क्षण
झुलसता जाता है
जो भी देखे, काँप उठे
जैसे उघड़े तन पर चाबुक की मार पड़े।
हड्डियों में भिदा हुआ
आत्मघातक बुखार
नीली शत-शत जिह्वाओं से
धमनियों का सृजनशील लाल रक्त
सोख रहा,
और उसी यातना से दबे
हम सब देखते हैं
शून्यवत्, निर्विकार।
हमारे आसपास गुज़रने वाले
सफ़ेद क़दम
यह नहीं पाप विमोचन ?
यह तो है खालिस आत्म-हनन।
अपने जलते हुए तलुए
मिट्टी की अँधेरी परतों की

ऊर्जा पर सख़्ती से रखो,
आओ हम सब दौड़ें;
झरनों के ठण्डे पानी से
पैरों को राहत दें;
और पहचानें यह रहस्य
कि कैसे काली मिट्टी के पिण्ड को फोड़ कर
हरियाली ज़िन्दगी उभरती है ?
ज्वर को शान्त होने दो :
आँखों के अंगारे बुझने दो;
उछलने, उबल पड़नेवाले मन को
अ-चंचल बनने दो;
और मिट्टी की चेतना की उर्मियाँ
अंग-अंग में से लहराने दो,
तभी पहचानोगे माटी का जादू—
जब झुकोगे माटी के चरणों पर
शीश धरे
मिट्टी से निकलोगे
तभी, हाँ तभी हँस सकोगे।
लहलहाती फ़सलों वाले खेत में
हरे रंग के हाथ हिलानेवाले
करोड़ों पौधे;
जो जोश-भरे, गतिवान, ऊपर-ऊपर
सूर्य तक जाते हैं;

वैसी ही तरुणाई जागेगी तुममें।
मिट्टी के कारण ही
मानवता मृत्युंजय
मिट्टी में छिपी हुई
सृजनात्मक गति अक्षय।

सदानन्द रेगे प्रकृतिके श्रेष्ठ कवियोंमें-से हैं। कमसे कम शब्दोंमें अधिकसे अधिक कह देनेमें कुशल हैं। आपकी रचनाओंमें भावुक, तरल एवं मिश्रित बिम्ब मिलते हैं।

कविताके प्रति कविके मनमें तटस्थ वृत्ति है इसलिए अपनी ओरसे वे कोई निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करते। 'वे चित्र नहीं बनाते बल्कि स्नेप लेते हैं—आषाढ़-श्रावणके प्रति कविके मनमें गहरी आस्था है। जलपाँखीका प्रयोग उनकी कविताओंमें बार-बार हुआ है। नये बिम्बोंकी भीड़ रेगेकी रचनाओंमें मिलती है जो पाठकको चमत्कृत तो करती है पर कभी-कभी कविका कथ्य अस्पष्ट रह जाता है।

दुःख (वेदना) रेगेके काव्यका दूसरा प्रमुख तत्त्व है जो उनकी कहानीमें भी उभरकर आया है। कतिपय मार्मिक कविताएँ भी उन्होंने लिखी हैं और इधर नार्वेजियन कविताके मराठी अनुवाद प्रस्तुत किये हैं।

रचनाएँ : कविता – अक्षर बेल, गन्धर्व। कहानी – जीव-नाची वस्त्रें, कालोखाची पिसें, चादणें। बाल-साहित्य – रडमोडीचाघाट, चाँदोबा चाँदोबा। अनुवाद – स्टेनबेक तथा सोफोक्लीज़के अनुवाद।

मेरी हाथों की माटी कहती है

मेरे हाथों की माटी कहती है :
मुझे हरी घास पर सोना है
मेरे रक्तका प्रवाह कहता है :
मुझे पहाड़ की फिरकनी घुमानी है ।
मेरी भुजाओं का विद्रोह कह रहा है :
मुझे इन्द्र का धनुष उठाना है ।
मेरे प्राणों का संगीत कह रहा है :
मुझे चाँदनी से होड़ लगाना है ।
मेरे आकाश में व्याप्त प्रकाश कहता है :
मुझे ब्रह्म का कमल छीनना है ।
मेरे अहं की राख कह रही है :
मुझे फिनिक्स का अण्डा उबालना है ।



चन्दन

आषाढ़ नीचे झुका
और पल्लविनी को
आलिंगन में बाँध लिया,
फिर बिजली के होठों से
क्षितिज का लेने लगा
जामुनी चुम्बन,
तब बादलों की बाँहों में घुली हुई
मिट्टी भी
लज्जा से हरी हो गयी,
और उसके वक्ष पर
सुरभित हो आया
सावन का कोमल चन्दन

आकाश का ज़ख्म

मेरे मन में
आकाश का ज़ख्म उभर आया है;
जिसे मैं मत्स्यावतार से
चाटता आया हूँ, युगों-युगों से,
दिशाओं की जिह्वा से ।
मेरे इस ज़ख्म की परिधि में—
कलंकी का अश्व भटक रहा है
विद्रोह की बिखरी अयाल फैलाये;
मेरे इस ज़ख्म के आँगन में—
दामन की छोटी तुलसी
बलि के माथे पर
तीसरा चरण धर के खड़ी है;
मेरे इस ज़ख्म की झील में—
वेदना ने धारण किया है
राधा का रूप
और कृष्ण की बाँसुरी
जमुना-तीरे
व्यथा की पंचम तान छेड़ती है ।

मेरा यह ज़ख़्म
रिसता है, लोकता है
जयद्रथ के विश्वासघात से;
मेरा यह ज़ख़्म जलता है
रोता है सिसकता है,
पांचालों के अपौरुष से,
मेरा यह ज़ख़्म सड़ता है
मेरे ज़ख़्म के वृक्ष तले—
रजस्वला द्रुपदसुता बैठी है
दुःशासन के नाम का कुंकुम लगा के।
बृहन्नला सीखता है
नृत्य के पाठ;
और बल्लव बने हुए महाबलि भीम
कीचक के रसोई घर में
चावलों में के कंकड़ बीनते हैं।
मेरे मन के ज़ख़्म में
अमावस का कलश उलटा पड़ा है;
और कराहता हुआ दुर्योधन
उसके किनारे पर बैठा
शरबिद्ध भीष्म को
उत्तरायण का मांस दिखाता है;
मेरे मन के ज़ख़्म में—
कर्ण के रथ का पहिया

चीखता है,
सुई की नोंक बराबर मिट्टी के नीचे
पागल द्रोण चीत्कार करते हैं;
"नरो वा कुंजरो वा"
-' नरो वा कुंजरो वा"
मेरे मन का ज़ख्म सुलग चुका है
पागल बन चुका है
उसके उर में बैठा हुआ घटोत्कच
खाता है आसमान;
उसके चक्र में
राह भूला हुआ अभिमन्यु
खोजता है उत्तरा का गर्भ;
उसके मोड़ पर
पेट पकड़ के अश्वत्थामा बचा है;
उसकी चौहद्दी में
नरक की राह पर
शकुनी की चौपड़ के पाँसे सहलाते हुए
जुआरी पाण्डवों का झुण्ड जा रहा है;
भीतर ही भीतर
उसे सिर्फ़ यही सन्तोष है,
यही हलकापन है
कि युधिष्ठिर का वफ़ादार कुत्ता
पीछे-पीछे आ रहा है;

और नरम गीली जीभ से
मेरे ज़ख़्म को चाट रहा है,
मात्र उतना ही सुख है
मेरे ज़ख़्म को
उतनी ही देर भला लगता है !
मेरे मन में
आकाश का ज़ख़्म उभर आया है।



वेदनाओं का कत्थक

तुम्हारे गीले बालों की लहर
सुगन्ध के किनारे तक जा कर
बिछलती है;
और उसके फेन में से फूटने वाला
चाँदनी का मनमोर,
मेरे इन्द्रधनुष की कमान के नीचे
पंख फैला कर,
वेदनाओं का कत्थक शुरू करता है।
तुम्हारे नाख़ूनों की पत्तियों पर बैठे हुए
मेंहदी के पागल पंछी
धूमकेतु की राह पर उड़ने लगते हैं,
फुर-फुर
और उनके इन्तज़ार से उभरी हुई
रंगों की कमल-बेल
फूलों के पंख फैला कर
मेरे सपनों की मीनार के नीचे;
चन्द्रकला की सोलह कलाएँ
रचने लगती हैं।

सदानन्द रेगे

मिट्टी की डाल पर
आषाढ़ की छाया पड़ती है
और काली धूल के
कानों में बहने वाली
सावन की हरी भाफ के नीचे
मेरे सपनों का दम घुटने लगता है;
तभी—
वेदनाओं को
कत्थक प्रारम्भ करने की
सनक आती है।

मैं आती हूँ तूफ़ान बन के

मैं आती हूँ तूफ़ान बन के
और सोचती हूँ :
कि मेरे किनारों पर उभरे
उसके पैरों के निशान
पोंछ सकूँगी मैं,
लेकिन वे पद-चिह्न वैसे ही रहते हैं
मेरे किनारे की बालू को डँसी हुई ।
और फिर समझ में आता है
कि ये चिह्न ऐसे ही रहेंगे,
ऐसे ही दिखेंगे
आखिरी क्षण तक,
मेरे सपनों के अंग काट खाते हुए
क्योंकि
मेरे ही आँसुओं से भींगी हुई रेत पर
उभरे हैं उसके जख्म
जो कोई तूफ़ान
कभी पोंछ नहीं सकता
कभी मिटा नहीं सकता ।

■

आभार

●

—भूमिका लेखक श्रद्धेय माचवेजीके प्रति विनम्र भावसे कृतज्ञता अर्पण करता हूँ। सच पूछा जाये तो हिन्दी-मराठीके बीच सेतु-बन्धनका महत् कार्य करनेवालोंमें उनका योगदान सबसे अधिक है इसलिए इस संकलनकी भूमिका लिखनेके एकमात्र अधिकारी वे ही थे। इसके अतिरिक्त समय-समयपर मुझे उनसे विशेष मार्ग-दर्शन मिलता रहा।

—संकलित कवियोंमें सर्वश्री आ० रा० देशपाण्डे 'अनिल', पु० शि० रेगे, विन्दा करन्दीकर, मंगेश पाडगाँवकर, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध तथा बसन्त बापटने व्यक्तिगत रूपसे प्रोत्साहन एवं परामर्श दिया इसलिए उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

—अनुवादकी अनुमति प्रदान करने हेतु सभी कवियोंके प्रति विनम्र भाव-से अनुग्रहीत हूँ।

—पाण्डुलिपि तैयार करनेमें रश्मि सोनवलकर, वनिता सोनवलकर तथा शरद श्रीवास्तवका परिश्रम और टंकित प्रतियाँ तैयार करनेमें श्री सुरेन्द्र जैन एवं जमुना असाटीका सहयोग स्मरणीय है।

— *दिनकर सोनवलकर*